I-H-5461

DAUD

चांदायन

[दाऊद-विरचित प्रथम हिंदी सूफ़ी प्रेम-काव्य]

संपादक

माताप्रसाद गुप्त, एम० ए०, डी० लिट्०

निदेशक, क० मु० हिंदी तथा भाषा-विज्ञान विद्यापीठ, आगरा

प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा

प्रकाशक :
रामजी गुप्त,
प्रामाणिक प्रकाशन,
३५, लाजपत कुंज,
सिविल लाइन्स, आगरा

समस्त प्रकाशनाधिकार सुरक्षित
प्रथम संस्करण, मई, १९६७
११०० प्रतियाँ
मूल्य : २० रुपये

B953636
X
V.10.K

मुद्रक :
दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स
दरेसी नं० २, आगरा

प्रस्तावना

'चांदायन' की फ़ारसी-अरबी में लिखी हुई कतिपय त्रुटित प्रतियों में बिखरे हुए ८० कडवकों को नागरी में लिपिबद्ध कर प्रस्तुत करने का प्रथम प्रयास अब से सात-आठ वर्ष पूर्व इन पंक्तियों के लेखक ने किया था। इसके अनंतर क० मु० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ के तत्कालीन निदेशक डॉ० विश्वनाथ प्रसाद ने फ़ारसी में लिपिबद्ध भोपाल की एक प्रति के कडवकों को, जो प्रिंस ऑव वेल्स म्यूज़ियम बंबई में थी, नागरी में लिपिबद्ध किया था। ये दोनों प्रयास एक ही जिल्द में उक्त विद्यापीठ द्वारा १९६२ में 'चंदायन' नाम से प्रकाशित हुए थे। तीन वर्षों के लगभग हुए डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त ने जॉन राइलैण्डस लाइब्रैरी, मैनचेस्टर की एक प्राचीन प्रति, तथा अन्य कुछ नवीन संपादन-सामग्री के साथ उक्त प्रतियों का भी उपयोग करते हुए, जो मेरे और डॉ० विश्वनाथ प्रसाद द्वारा प्रस्तुत किए हुए पाठों में प्रयुक्त हो चुकी थीं, 'चंदायन' नाम से रचना का एक पूर्णतर पाठ प्रस्तुत किया। इन प्रयासों ने हिंदी सूफ़ी प्रेमाख्यान परंपरा की प्रथम रचना के संबंध में जहाँ विचारणीय सामग्री प्रस्तुत की, वहाँ रचना के एक ऐसे आलोचनात्मक संस्करण के अभाव की ओर भी निर्देश किया जिसको रचना और उसकी परंपरा के अध्ययन के लिए एक अधिक निश्चयपूर्ण आधार बनाया जा सकता। प्रस्तुत प्रयास इसी लक्ष्य को सामने रखते हुए किया गया है।

ऊपर उल्लिखित प्रतियों के अतिरिक्त और उन सब की अपेक्षा पूर्णतर रचना की एक प्रति जयपुर के एक साहित्य-सेवी श्री रावत सारस्वत के पास थी और यह प्रति नागरी में थी, जबकि शेष समस्त प्रतियाँ फ़ारसी-अरबी लिपियों में थीं। लगभग छः मास हुए इसी पाठ-शोध के प्रसंग में मैंने श्री सारस्वत को रचना के एक कडवक का पाठ अपनी प्रति से भेजने को लिखा, तो उन्होंने न केवल उसका पाठ मुझे भेजा, बल्कि मेरी पाठ-शोध-निष्ठा को देखकर उन्होंने लिखा कि यदि मैं रचना का आलोचनात्मक पाठ-संपादन करने को प्रस्तुत हूँ तो वे उक्त प्रति को दे सकते थे और तदनंतर उन्होंने उक्त प्रति विद्यापीठ को दे भी दी।

इस अंतिम प्रति के उपयोग के लिए मैं आगरा विश्वविद्यालय के विद्यानुरागी कुलपति, जिसका उक्त विद्यापीठ एक अभिन्न अंग है, डॉ० श्री रञ्जन जी

का हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने प्रस्तुत कार्य के लिए उक्त प्रति के उपयोग की अनुमति दी। शेष प्रतियों में से कुछ के फ़ोटोग्राफ़ का उपयोग मैं अपने पहले के प्रकाशित कार्य में कर चुका था, प्रिंस ऑव वेल्स म्यूज़ियम में सुरक्षित भोपाल की त्रुटित प्रति के फ़ोटोग्राफ़ जो डॉ० विश्वनाथ प्रसाद द्वारा प्रस्तुत किए हुए रचना के पूर्वोल्लिखित संकलन में प्रयुक्त हो चुके थे, विद्यापीठ में सुरक्षित थे, राइलैण्ड्स पुस्तकालय मैनचेस्टर की प्रति के फ़ोटोग्राफ़ राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के पुस्तकालय में मुझे उस समय मिल गए थे जब मैं चार वर्ष पूर्व वहाँ पर था, मसाचसेट्स के होफ़र-संग्रह के दो पृष्ठों के अक्स 'मध्ययुगीन' हिंदी प्रेमाख्यान के लेखक और मेरे प्रिय शिष्य डॉ० श्याममनोहर पाण्डेय ने दो-ढाई वर्ष पूर्व भिजवाए थे, जब वे शिकागो विश्वविद्यालय में अमेरिका में थे। इन अन्य सामग्रियों के भी स्वामियों और उपयोग-सूत्रों का मैं हृदय से आभारी हूँ।

सुंदर छपाई के लिए मैं स्थानीय दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, और विशेष रूप से उसके व्यवस्थापक श्री पुरुषोत्तमदास भार्गव को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने बड़ी तत्परता के साथ पुस्तक छापी है। कुछ भूलें रह गई हैं, जो पुस्तक के अन्त में शुद्धि-पत्र में दी हुई हैं। पाठक कृपया इन्हें शुद्ध कर पढ़ेंगे।

प्रस्तुत प्रयास भी उसी परंपरा में है जिसमें लेखक के अधिकतर पूर्ववर्ती प्रयास हैं—रचना के निर्धारित पाठ को देते हुए संदर्भ, शीर्षक, पाठ-टिप्पणियाँ, पाठांतर, अर्थ और शब्द-कोश देने के अतिरिक्त भूमिका में रचना से संबंधित समस्त समस्याओं पर एक मौलिक प्रकाश डालने का यत्न किया गया है। इस प्रयास में स्वीकृत पाठों के उन अंशों को जिनके पाठान्तर दिए गए हैं अंकों से चिह्नित करने के स्थान पर उलटे कामों से चिह्नित किया गया है, जिससे इस भ्रम की संभावना न रहे कि पाठांतर स्वीकृत पाठ के किन अंशों के हैं। आशा है कि इस नवीनता से पाठकों को यथेष्ट सुविधा होगी।

आगरा
८-५-६७

माताप्रसाद गुप्त

विषय-सूची

	पृष्ठ-संख्या
भूमिका ...	१-७२
१. दाऊद और उसके सम-सामयिक	१
२. रचना-काल और स्थान	३
३. रचना का नाम-रूप	४
४. रचना की कथा और उसका आधार	१६
५. रचना का संदेश	३६
६. रचना की संपादन-सामग्री	५२
७. रचना की लिपि-परंपरा	५६
८. रचना के संपादन-सिद्धान्त	५८
९. रचना की भाषा	६०
चांदायन (पाठ, पाठांतर तथा अर्थ) ...	१–३९२
परिशिष्ट (प्रक्षिप्त कडवक) ...	३९३–४२६
शब्द-कोश ...	४२७–४४४

प्रियवर

राम तथा श्याम

को

सस्नेह

भूमिका

१. दाऊद और उनके समसामयिक

रचना में दाऊद ने अपने विषय में बहुत कम लिखा है। उन्होंने रचना की तिथि सन् ७८१ दी है,[१] जो विक्रमीय सं० १४३६ के बराबर होती है, इसलिए कदाचित् सं० १४०० के आस-पास उनका जन्म और सं० १४७५ के आस-पास उनका निधन माना जा सकता है। रचना का स्थान उन्होंने दलमौ (डलमऊ) नगर बताया है, जो गंगा-तट पर स्थिति था।[२] यह नगर उत्तरप्रदेश के रायबरेली ज़िले में अब भी है और एक अच्छा कस्बा है। यहाँ के मीर उनके समय में मलिक बयां के पुत्र मलिक मुबारक थे, जैसा कि दाऊद ने लिखा है।[3]

रचना के प्रारंभ में दाऊद ने पाँच कडवकों में ख़ानेजहाँ की प्रशंसा की है[४], और उसे 'सयाना मंत्री' कहा है।[५] साथ ही उन्होंने शाहे-वक़्त के रूप में फ़ीरोज़शाह की प्रशंसा की है।[६] इतिहास के अनुसार ख़ानेजहाँ फ़ीरोज़शाह का वज़ीर था, जिसका देहान्त ७७२ हि० में हो गया था, और जिस समय दाऊद ने प्रस्तुत काव्य की रचना की, उसका वज़ीर ख़ानेजहाँ का पुत्र जौना शाह या जूना शाह था।[७] दाऊद ने भी वज़ीर के रूप में जौना शाह का उल्लेख किया है।[८] 'ख़ानेजहाँ' एक उपाधि थी, जो कि संभव है जौना शाह को भी दी गई हो, इसलिए इन उल्लेखों में परस्पर कोई विरोध नहीं ज्ञात होता है। इन ख़ानेजहाँ को दाऊद ने 'खौंद' (ख़ाविन्द-फ़ा०) लिखा है—

'षौंद' खान जी (बि ?) ना और गुनी को आहि।
'षौंद' षान गै दान दिवावै।[९]

'ख़ाविन्द' 'स्वामी' का फ़ारसी पर्याय है, इसलिए यह निश्चित है कि दाऊद ख़ानेजहां के आश्रित थे। यद्यपि दाऊद ने लिखा नहीं है, किन्तु यह अनुमान

---

[१] कडवक १७। [२] वही। [3] वही। [४] कडवक १०-१४। [५] कडवक १०। [६] कडवक ८। [७] 'मुंतख़िबुत्तवारीख' से श्री एस० एच० अस्करी के 'रेयर फ़्रंगमेंट्स आफ् चंदायन ऐंड मृगावती' शीर्षक लेख में पृ० ७ पर उद्धृत। [८] कडवक १७। [९] क्रमशः कडवक १० तथा ११।

किया जा सकता है कि प्रस्तुत काव्य की रचना उन्होंने ख़ानेजहाँ के अनुरोध पर की होगी।

दाऊद 'मौलाना' कहलाते थे [जिस का अर्थ विद्वान् होता है यह अलबदायूनी के उनके संबंध के एक उल्लेख से ज्ञात होता है।[१०] रचना के एक कडवक में जहाँ 'दाऊद' का नाम आता है, उसके एक पाठ में 'मौलाना' उपाधि जुड़ी हुई है।[११] यह उपाधि स्वत: कवि ने अपने नाम के साथ न रक्खी होगी, यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है, किन्तु इससे इस बात का समर्थन होता है कि दाऊद को 'मौलाना' की उपाधि प्राप्त थी, और वे 'मौलाना' के रूप में प्रसिद्ध भी थे। हिन्दी के कुछ इतिहास-लेखकों ने उन्हें 'मुल्ला' कहा है, जो अशुद्ध है।

एक 'मौलानाज़ादा' दाऊद का उल्लेख इतिहास-ग्रंथों में मिलता है, जिन्होंने सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के देहावसान के अनंतर उसके उस वज़ीर ख़्वाजाजहां की ओर से दूतत्व किया था, जिसने किसी को मुहम्मद तुग़लक का पुत्र कहकर दिल्ली की गद्दी पर बिठा दिया था। कहा गया है कि तीन अन्य व्यक्तियों के साथ इन 'मौलानाज़ादा' को भी उसने फ़ीरोज़शाह की सेवा में यह समझाने-बुझाने के लिए भेजा था कि वह दिल्ली की ओर न बढ़े, किन्तु उसने ख़्वाजाजहां का यह अनुरोध स्वीकार नहीं किया और उक्त 'मौलानाज़ादा' के द्वारा उत्तर भेजा कि जिस व्यक्ति को उसने दिल्ली के तख़्त पर बिठाया था, वह मुहम्मद तुग़लक का पुत्र नहीं था, इसलिए उसे मुहम्मद तुग़लक का वैध उत्तराधिकारी वह नहीं स्वीकार सकता था, और इसके इसके पश्चात् उसने आगे बढ़कर दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार भी कर लिया था। ('तारीख़े फ़ीरोज़शाही', पृ० १११, तथा 'तारीख़े मुबारकशाही' पृ० १२१)। किंतु यह मानने के लिए पर्याप्त कारण नहीं दिखाई पड़ता है कि उक्त 'मौलाना-ज़ादा' दाऊद और 'चंदायन' के रचयिता दाऊद, जो अपनी विद्वत्ता के कारण 'मौलाना' कहलाते थे, एक ही व्यक्ति थे। यदि हमारे दाऊद ख़्वाजाजहां के विश्वास और प्रीतिपात्र रहे होते, जैसे वे इन उल्लेखों में बताए गए हैं, तो वे किसी न किसी रूप में इसका उल्लेख अवश्य करते। मेरी समझ से दोनों व्यक्ति एक-दूसरे से भिन्न थे।

दाऊद ने अपने गुरु का नाम ज़ैनुद्दीन बताया है और रचना के प्रारम्भ में

[१०] दे० 'मुंतख़िबुतवारीख़' का ऊपर उद्धृत सन्दर्भ। [११] कडवक ३२९।

उनकी भी स्तुति की है।[१२] किन्तु इन ज़ैनुद्दीन के संबंध में और कोई जानकारी उन्होंने नहीं दी है और न अन्यत्र से प्राप्त हो सकी है।

रचना में दाऊद ने तीन स्थानों पर तीन विभिन्न व्यक्तियों को संबोधन भी किया है—ये हैं मुहम्मद, सिराजुद्दीन तथा मलिक नत्थन।[१३] इनके संबंध में कोई जानकारी न हमें दाऊद की रचना से मिलती है और न इतिहास से। एक मीर मसूद (मसऊद) को भी उनका समसामयिक माना गया है, किन्तु वह अशुद्ध है, वह 'मेरइ सूधि' का अपपाठ मात्र है।[१४]

२. रचना-काल और स्थान

मौलाना दाऊद के समय के सम्बन्ध में कुछ विवाद रहा है, किन्तु अल्बदायूनी के एक उल्लेख से उसका समाधान हो जाता है। 'मुंतख़िबुत्तवारीख़' में उसने लिखा है—'सन् ७७२ हि० (१३७० इस्वी) में ख़ानेजहां, जो फ़ीरोज़शाह का प्रधान मंत्री था, मर गया और उसका लड़का जूना शाह (या जौना शाह) उसके पद पर नियुक्त हुआ। 'चंदायन' जो हिन्दी की एक मसनवी है और लोरिक तथा चांदा के प्रेम का वर्णन करती है, उसके लिए मौलाना दाऊद द्वारा रची गई थी। यह इन भूभागों में इतनी अधिक प्रख्यात है कि इसकी प्रशंसा करना अनावश्यक होगा। मख़दूम शेख़ तक़ीउद्दीन वाइज़ रब्बानी ने एक अवसर पर इससे कुछ अंश पढ़ कर सुनाए, तो इसे सुनकर लोगों को एक अद्भुत आनंद प्राप्त हुआ। जब उस युग के कुछ विद्वानों ने शेख़ से मसनवी को इस प्रकार महत्व देने का कारण पूछा, तो उन्होंने उत्तर दिया कि यह पूरी रचना ईश्वरीय सत्य तथा संकेतों से भरी हुई थी, रोचक थी, ईश्वर-प्रेमियों और उपासकों को आनंदपूर्ण चिन्तन की सामग्री प्रदान करती थी, 'कुरान' की कुछ आयतों का मर्म स्पष्ट करने में उपयोगी थी और भारत के मधुर गीतों की परिचायिका थी।[१५]

कुछ समय हुआ, श्री अगरचंद नाहटा ने 'मिश्रबंधु विनोद' की कुछ भूलों की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा था कि मौलाना दाऊद की इस रचना की तिथि ७८१ हि० है जो १४३१ वि० होती है, ओर यह लिखते हुए उन्होंने उसकी एक प्रति से कुछ पंक्तियां भी उद्धृत की थीं।[१६] यह प्रति कदाचित् बी० थी, जिसके अनुसार संबंधित पंक्तियां निम्नलिखित हैं :—

[१२] कडवक ९। [१३] क्रमश: कडवक ७५, २६५ तथा ३२९। [१४] कडवक २६५। [१५] एस० एच० अस्करी : 'रेयर फ्रैगमेन्ट्स ऑव चंदायन ऐंड मृगावती' पृ० ७ पर उद्धृत। [१६] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५४, अंक १, पृ० ४२।

बरस सातै(त) सै होये इक्यासी।
तिहि या(य)ह कबि सरसे(स) उभासी॥
साहि पेरोज ढीली सुलतानू।
जोना साहि इजीरु(उजीरु) बखानू॥
दलमौ (डलमउ) नयरु बसै नवरंगा।
उपरि कोटु तले बहै गंगा॥[१७]

अल्बदायूनी के ऊपर उद्धृत विवरण से इस तिथि का मेल पूरा बैठता है, इसलिए इसमें कोई सन्देह अब शेष नहीं है कि मौलाना दाऊद की उपर्युक्त रचना सन् ७८१ हि० की है। किन्तु ७८१ हि०=१४३६ वि० है।[१८] रचना का स्थान भी निर्विवाद रूप से डलमऊ है, जो अब उत्तर प्रदेश के रायबरेली ज़िले में स्थिति है, जहाँ पर कवि निवास करता था, जो रचना में वहां के मीर मलिक मुबारक की विस्तृत प्रशंसा से प्रकट है।[१९]

३. रचना का नाम-रूप

एक कडवक जो रचना के 'बिसहर खण्ड' के अंत में आता है, और जिसमें रचना के नाम का उल्लेख हुआ लगता है, इस प्रकार है—

'दाऊद कबि चांदायनि(न?) गाई'। जेइं र (रे) सुना सो गा मुरझाई।
धनि ते बोल धनि लेखनहारा। धनि ते अखिर धनि अरथु बिचारा।
हरदीं जात सो चांदा रानी। सांप डसी हउं सोइ बखानी।
'तउ र(रे) कहा मइं यहु खंडु गांवउं'। 'कथा काबि' कइ लोग सुनावउं।
नथन मलिक दुख बात उभारी। सुनहु कान दइ बहु गुनयारी।
अउर केत मइं करउं बीनती सीसु नाइ कर जोरि।
इकइक सुनि सुनि बोलु बिचारौ कहौं जो हिदो(हिरदौ) तौरि॥[२०]

इस कडवक के प्रथम चरण का ऊपर दिया हुआ पाठ बी० प्रति का है, मै० का उसका पाठ है—'मौलाना दाऊद यह कबि गाई' और म० का है—'दाउद कबि जउ चांदा गाई'। प्रथम चरण का मै० का पाठ पूर्ण रूप से स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि दाऊद स्वत: अपने को 'मौलाना' नहीं लिख सकते थे, शेष दो विचारणीय हैं।

अवधी की सूफ़ी प्रेमाख्यान परंपरा में काव्यों का नाम प्राय: नायिका के नामों से अभिन्न है—'मृगावती', 'पदुमावती', 'मधुमालती' आदि नामों से

[१७] कडवक १७। [१८] देखिए—स्वामी कन्नू पिलई : इंडियन एफिमिरस। [१९] कडवक १५-१६। [२०] कडवक ३२९।

यह प्रकट है। प्रस्तुत रचना की नायिका 'चांद' है, जिसका नाम छंद की आवश्यकताओं के कारण 'चांदा' भी मिलता है। इसलिए रचना का नाम 'चांद' या 'चांदा' हो ही सकता है। साथ ही कवि ने अपनी रचना को 'कथा काव्य' कहा है—'कथा काबि कइ लोक सुनावउं', इसलिए रचना का पूरा नाम 'चांद-कथा' रहा हो तो भी आश्चर्य न होगा। किन्तु इस प्रसंग में एक तथ्य और भी विचारणीय है। जैसा हम इसी शीर्षक में आगे देखेंगे, रचना संभवत: २७ खंडों में विभक्त थी, और चंद्र की स्थितियों के नक्षत्र भी भारतीय ज्योतिष के अनुसार २७ हैं; साथ ही नायिका को आकाश के चन्द्र का अवतार कहा गया है, और इस प्रकार की उक्तियों का भी प्रयोग रचना में हुआ है जिनमें नायिका आकाश के चांद के रूप में प्रस्तुत की गई है, और नक्षत्रों के प्रसंग में 'अयन' का अर्थ उनका वृत्त या मार्ग होता है, इसलिए 'चांदायन' या 'चंदायन' नाम भी काफ़ी संभव लगता है।

बी० पाठ में 'चांदायन' के स्थान पर जो 'चांदायनि' मिलता है, वह उसकी एक विशिष्ट प्रकृति के कारण भी हो सकता है: इस पाठ में कहीं-कहीं पर अकारान्त एक० पुं० के स्थान पर इकारान्त कर्त्ता-कर्म कारकों के चिह्न के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है। अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी की भांति इकारान्त प्रस्तुत रचना में भी प्राय: अकारान्त एक० पुं० संज्ञाओं के करण-अधिकरण कारकों के चिह्न के रूप में ही मिलता है, किन्तु बी० पाठ में वह कहीं-कहीं पर कर्त्ता-कर्म कारकों के चिह्न के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है' जो नीचे दिए हुए बी० के पाठांतरों पर दृष्टि डाल कर स्वत: देखा जा सकता है—

कर्त्ता : 'महरि' दीत बावन कहं चांदा (३९.७), जहां 'महरि' पटसारि संवारी (४१.१), मैं न अकेले सब 'जगि' देषा (६६.५), उलटि 'समदि' जनौं मानिक रहे (६८.४), 'महरि' मंदिर चढि देषा (९२.६), राय 'महरि' घरि आपनु साजा (१०२.१), भाटि कहा तब राइ स्यो (१०४.६), 'महरि' काढि केकान पलाने (११८.१), सुना 'सियारि' पितर पख आवा (१२०.५), रेवत 'महरि' दीन्ह यकतारी (१२६.१), 'महरि' देषि तौ लोरु बुलावा (१२८.१), लोरिन्हु 'महरि' पाट बैसारा (१५१.१), 'बीरि' भुआ बरि बरहु फिरावा (१९१.१), परतिहार 'भरि' बैठ दुवारू (३६४.५), बि(बी)रह 'बिपरि' आसिका औधारी (३६६.२), मैना सबदु जु 'बिपरि' सुनावा (३७०.१), सुना 'लोरि' हिय गहबरि आवा (३७०.१)।

कर्म : बहुरि यही 'षंडि' गाउ (६४.६), राय महरि 'घरि' आपनु साजा (१०२.१), चलहु बेगि 'घरि' जाहि (१६९.६)।

प्रति की पुष्पिका में रचना का नाम 'कथा चांदायन' आता भी है (दे० आगे 'रचना की संपादन-सामग्री' शीर्षक के अन्तर्गत दिया हुआ बी० प्रति का परिचय), इससे भी इसी की पुष्टि होती है।

'चांदायनि' को स्त्री० वाची रूप मानकर उसे नायिका तथा उसके आधार पर रचना दोनों के नामों के रूप में भी ग्रहण किया जा सकता है, जिस प्रकार उसके कुछ लोक-गाथा रूपों में हुआ है। इस दशा में शब्द 'चान्द्रायणिका' से व्युत्पन्न होगा, जिसका अर्थ होता है 'चन्द्रायण व्रत करने वाली स्त्री'। यद्यपि कथा में इस नाम के लिए कोई आधार नहीं मिला है, किन्तु नामकरण कभी-कभी बिना आधारों के भी हो जाता है, इसलिए यह विकल्प भी विचारणीय है। यह अवश्य है कि नायिका के नाम के रूप में 'चांदायनि' रचना में एक स्थान पर भी नहीं आया है, 'चांद' या 'चांदा' ही आया है।

किन्तु बी० प्रति के प्रारंभ में प्रति का परिचय 'चंदायन' नाम के साथ दिया गया है : 'नुसख़ह चंदायन गुफ़्तार मौलाना दाउद दलमई'। इस प्रति की पाठ-परंपरा फ़ारसी लिपि की थी, यह भली-भाँति देखा जा सकता है। फ़ारसी में मिलने वाले ऐतिहासिक ग्रंथों में भी यही नाम मिलता है। अतः यह असंभव नहीं है कि फ़ारसी लिपि के माध्यम से इस ग्रंथ से परिचय प्राप्त करने वाले लोगों में 'चंदायन' नाम ही प्रचलित रहा हो।

फलतः 'चांद' 'चांदा', 'चांद कथा','चांदायन', 'चांदायनि' और 'चंदायन' में से कौन-सा निश्चित रूप से रचना का नाम रहा होगा, यह कहना कठिन है। इस कठिनाई की स्थिति में इस संस्करण के लिए मैंने 'चांदायन' नाम स्वीकार किया है, जो कि मुझे सबसे अधिक संभव लगा है।

इस रचना के स्फुट कडवकों का जो संकलन मैंने पहले किया था, उसमें भी ऊपर उद्धृत कडवक आता था, क्योंकि म० में, जो उस संकलन की एक आधार-भूत प्रति थी, यह कडवक मिलता था। उसमें चौथी अर्द्धाली के प्रथम चरण का पाठ मैंने इस प्रकार दिया था—

तोर (लोर) कहा मइं यहि खंड गांऊं (गांवउं)।

और इसके आधार पर मैंने लिखा था कि रचना में 'लोर-कहा' नाम आता है, जो 'लोर-कथा' का अपभ्रंश है (भूमिका, पृ० ४)। किंतु कडवक का जो पाठ मैंने अब दिया है, वह बाद में प्राप्त अन्य दो प्रतियों मैं० तथा बी० की सहायता से निर्धारित हुआ है, इसलिए रचना के नाम के संबंध का मेरा पूर्ववर्ती अनुमान अब स्वीकार्य नहीं है।

जहाँ तक रचना के रूप का प्रश्न है, वह उद्धृत कडवक की चौथी अर्द्धाली में दिया हुआ है और वह है 'कथा-काव्य' अर्थात् कथा-प्रधान वह रचना जिसे काव्य का रूप दिया गया हो। 'कथा' शब्द का प्रयोग रचना में अन्यत्र भी इसी अर्थ में हुआ है (यथा ६१.६)। साथ ही कवि ने उसके खंड-विशेष के गान करने का उल्लेख किया है, इससे यह प्रकट है कि यह कथा-कृति खंडों में विभाजित थी। यह खंड-विभाजन अब रचना की किसी-प्रति में नहीं मिलता है, किन्तु मैं० में कडवक के शीर्षक में 'बिसहर खंड' की समाप्ति का स्पष्ट उल्लेख हुआ है : "आख़िर बिसहर खंड चंद सुख़न फ़रमूदने मौलाना नत्थन।" इससे यह प्रमाणित होता है कि मैं० के किसी पूर्वज में खंड-विभाजन अवश्य था, और इस खंड को उसमें 'बिसहर खंड' कहते हुए समाप्त किया गया था। एक अन्य स्थान पर रचना में पुनः इसी प्रकार 'खंड' शब्द का प्रयोग हुआ है जैसा कि विवेच्य कडवक में हुआ है : जब बाजिर राव रूपचंद से चांदा का शृंगार-वर्णन प्रारंभ करते हुए उसकी मांग का वर्णन करता है, राव कह उठता है, कि वह इसी खंड को गाए—

राउ रूपचंद बोला बहुरि इहइ 'खंड' गाउ।[२१]

फलतः यह निश्चित है कि रचना अपने मूलरूप में खंडों में विभक्त थी, जिनके नाम कदाचित् फ़ारसी की मसनवियों में खंड-विभाजन की प्रथा न होने के कारण रचना के फ़ारसी-सुर्खी-लेखकों ने निकाल दिए।

फ़ारसी के शीर्षक कवि के दिए हुए नहीं हैं, अन्य व्यक्तियों के दिए हुए हैं, यह तथ्य एक तो इससे प्रमाणित है कि सभी प्रतियों में ये शीर्षक भिन्न-भिन्न हैं, दूसरे इससे कि ये कभी-कभी ग़लत भी हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित शीर्षकों को लीजिए :

कडवक ५३ अ (दे० परिशिष्ट) : शि० : कैफ़ियत करदन फ़िराक़े माह फागुन पेश सहेलियान जुदाई शौहर=फागुन मास के पति वियोग का सहेलियों के आगे वर्णन करना। किन्तु इस कडवक में वर्णन माघ मास के कष्टों का है।

कडवक ७५ : भो० : सिफ़त मोहरए मह पैकरे चांदा मिस्ल औंदे कुलाल गुज़ाश्तन=चंद्र-बदनी की ग्रीवा की विशेषता को कुम्हार की चाक से अंकित करना। किंतु इस कडवक में ग्रीवा की तुलना कुम्हार की चाक से नहीं की गई है, बल्कि यह कहा गया है, उसकी ग्रीवा इतनी सुडौल है कि मानो किसी कुम्हार के द्वारा चाक पर रख कर फिराई गई हो।

---

२१ कडवक ६४।

कडवक ९८ : मै० : रज़ा तलबीदने रसूलान बराए बाज़ गुश्ज़तन ख़ुद अज़राय=दूतों का अपने जाने के लिए राय से स्वीकृत लेना। किन्तु इस कडवक में राव रूपचन्द के द्वारा महर के दूतों को दी गई उस धमकी का उत्तर मात्र है जो उन्हें इसके पूर्व के कडवक में दी गई है।

कडवक १०२ : मै० : रोज़े दुवम राव रूपचंद क़सदे हिसार कर्दन व बेरूं आमदने महरा जंग कर्दन उफ़्तादन=दूसरे दिन राव रूपचंद का घेरा डालने का संकल्प करना व महर का बाहर आकर युद्ध करने के लिए उठना। किंतु इस कडवक में न रूपचंद के घेरा डालने की घटना आती है और न महर के बाहर निकल कर युद्ध करने की। घेरा कडवक ९२ में डाला जा चुका है, और महर युद्ध के लिए कडवक १३१ में बाहर निकलता है।

कडवक ११० : भो० : लोरिक जानिब ख़ानए राव रफ़्तन···=लोरिक का राव (महर) के घर की दिशा में जाना···। किन्तु लोरिक इस कडवक में महर के घर नहीं, अजई के घर जाता है, जो उसको आया जानकर घायल होने का बहाना बनाता है।

कडवक १२३ : मै० : जंग कर्दने सिंगार बा बांठा·····=सिंगार का बांठा के साथ युद्ध करना·····। किंतु सिंगारतो सिंह के साथ राव रूपचंद की ओर से लड़ने के लिए युद्ध-भूमि में उतरा है : सींह सिंगार बीर दुइ आए : राइ मया करि पान देवाए (१२२.२); और सिंह को कुंवरू के चेर ने मारा है (१२२.६-७)। कडवक १२२ में तो बांठ का नाम भी नहीं आता है।

कडवक १५६ : मै० : रफ़्तने बिरस्पत ब बहाने कारी दरख़ानए लोरिक=काम के बहाने बिरस्पति का लोरिक के घर जाना। किंतु कडवक में बिरस्पति काम का बहाना करके लोरिक के घर नहीं गई है, वह बाज़ार कुछ सौदा लेने गई हुई थी, और केवल लोरिक के स्नेह के कारण उसके घर की ओर जा पड़ी है।

कडवक १७० : मै० : कैफ़ियत दर तनहाइए लोरिक गोयद=लोरिक एकान्तता में अपना हाल कहता है। किंतु प्रसंग लोरिक का एकान्तता में अपना हाल कहने का नहीं है, अपनी असहायता का अनुभव करने का है; वह अपनी असहायावस्था पर व्यथित हो रहा है।

कडवक १७२ : मै० : तलबीदने चांदा बिरस्पति रा पुरसीदने हिकायते लोरिक=चांदा का बिरस्पति को बुलाना और लोरिक का हाल पूछना। किंतु कडवक में चांदा बिरस्पति से कोई पिरम कहानी कहने मात्र का अनुरोध करती है, जिससे वह विरह-दुःख को भुला सके।

कडवक १९५ : मै० : सिफ़ते तख़्ते ज़रीं व मुकल्लल ब जवाहराते(?) चिराग़=ज़री के तथा मुलम्मा किए हुए तख़्त और दीपों के रत्नों की विशेषता। किन्तु इस कडवक में तख़्त तथा रत्न-दीपों का कोई प्रसंग नहीं है, प्रसंग सुंदर पलंग और उस पर सोई हुई सुंदरी चांदा का है।

कडवक १९६ : मै० : बेदार कर्दन लोरिक चांदा रा अज़ ख़्वाब=लोरिक का चांदा को सोते से जगाना। किन्तु इस कडवक में कहा गया है कि बहुत चाहते हुए भी वह भय के कारण चांदा को जगा न सका।

कडवक १९८ : मै० : जवाब दादने लोरिक बर चांदा रा बा नरमी=लोरिक का चांदा की बात का नरमी से जवाब देना। किंतु नरमी से उत्तर देने की कोई बात इस कडवक में नहीं है, केवल लोरिक का चांदा से यह कथन आता है कि वह चोर नहीं है, वरन् उसका प्रेमी है।

कडवक २०७ : मै० : गुफ़्तने चांदा हिकायते इश्क़ ऊ=चांदा का उसके प्रेम का हाल कहना। किन्तु इस कडवक में चांदा लोरिक के इस कथन पर सन्देह व्यक्त करती है कि वह उस पर अनुरक्त है।

कडवक २०९ : मै० : गुफ़्तने चांदा हिकायते मैनां बा लोरिक=लोरिक से चांदा का मैनां का हाल कहना। किन्तु कडवक में चांदा लोरिक से यह कहती है कि मैनां जैसी स्त्री के रहते हुए भी वह जो उसके पास आया था, इससे ज्ञात होता था कि वह एक भ्रमर मात्र था, जो किसी पुष्प का रस लेकर पुनः उसके पास नहीं जाता है।

कडवक २२३ : मै० : आमदने मादर व पिदरे जानदन(?) दर ख़्वाब साख़्त ने चांदा ख़ुदरा=माता-पिता का आना और चांदा का स्वयं नींद में होने का बहाना गढ़ना। किंतु कडवक में बहाना गढ़ने की कोई बात नहीं है। उसमें दो बातें हैं : एक तो माता-पिता का आकर उसके चरित्र पर सन्देह करना और दूसरी उनका अपने दो भृत्यों को इसलिए भेजना कि वे जाकर यह पता लगाएं कि कोई चांदा के कक्ष में कहीं छिपा हुआ तो नहीं है, जिसे देखकर लोरिक के प्राणों का सूखना।

कडवक २२४ : मै० : विदाअ् कर्दने लोरिक बा चांदा=लोरिक को चांदा से विदा करना। किन्तु कडवक में लोरिक को चांदा का चेत में लाना और उसे यह ढाढ़स देना वर्णित है कि वह अब किसी प्रकार की शंका न करे क्योंकि अब चांदा प्रत्येक स्थिति में उसके साथ रहेगी।

कडवक २३४ : मै० : तक़रीर कर्दने खोलिन बर मैनां रा=खोलिन का मैनां से कथन करना। किन्तु कडवक में उल्लिखित कथन मैनां का खोलिन से है।

कडवक २४४ : मै० : कैफ़ियते चांद तराबत दर बुतख़ानः गुफ़्तन महत = मंदिर में के चांद के आह्लाद का हाल कहना । किन्तु कडवक में मंदिर में के चांद के आह्लाद का कोई कथन नहीं है, पंडित गणना करके चांदा को आषाढ़ी का पर्व बताता है और उक्त पर्व पर देव-मंदिर में जाकर सोमनाथ की पूजा करने का माहात्म्य बताता है ।

कडवक २६५ : भो० रिहा करदन अमीर मसऊद व जनक व सामान दादन मैनां रा व मनअ कर्दने चांदा रा = अमीर मसऊद का मुक्त करना, व मैनां को सामान देना व चांदा को मना करना । किंतु कडवक में—और पूरी रचना में भी—अमीर मसऊद या जनक की कोई बात नहीं आती है; अशुद्धि 'मेरई सूधि कइ' शब्दावली को ग़लत पढ़ने के कारण हुई है, जो कडवक के प्रथम ग्रथा सप्तम चरणों में आती है; मैनां को सामान देने का भी कोई प्रसंग नहीं है, चांदा से लोरिक ने अवश्य कहा है कि उसे यह समझना चाहिए था कि मैनां से किसी प्रकार का युद्ध (कलह) उसे नहीं करना था ।

कडवक २६५ : म० : दास्तान गुफ़्तने बावन बसख़ुन ख़ुद रा = बावन की स्वगतोक्ति की कथा । किन्तु कडवक में बावन का लोरिक से यह भुलावा-पूर्ण कथन है कि उसने उन दोनों को दंपति के रूप में स्वीकार कर लिया था और उन दोनों को गोवर लौट चलना चाहिए था, जिस पर वे विश्वास न कर आगे बढ़ते हैं।

कडवक २६६ अ (दे० परिशिष्ट): म० : दस्तान रवानः शुदन बावन तरफ़ ख़ानः ख़ुद = बावन का अपने घर की ओर प्रस्थान करने का वर्णन । किन्तु कडवक में उस धीमर का, जिसकी नाव छीन कर दोनों ने नदी पार की थी, राजा से यह समाचार निवेदन करना वर्णित है कि एक अप्रतिम सुंदरी एक पुरुष के साथ आई हुई थी, जिसके साथ सोने के आभूषणों से भरा हुआ एक पेटक भी था ।

कडवक २६६ : मै० : गिरफ़्तार शुदने बोदिया व दस्त बुरीदने लोरिक = बोदिया का गिरफ़्तार होना और लोरिक के द्वारा उसका हाथ काटा जाना। किन्तु कडवक में बोदिया के हाथ काटे जाने का कोई उल्लेख नहीं है, उल्लेख बोदिया के द्वारा आगत परदेसियों के काटे हुए हाथ-गात्र-और अंगुलियों के वहां पड़े हुए होने का है; बोदिया के हाथ काटने की बात बाद के कडवक में आती है ।

कडवक ३२१ : म० : दर्दमंदी ख़ुद गुफ़्तन लोरिक दरख़्त मुक़ाबिला (मुक़ाबिलन्) = लोरिक का वृक्ष के समक्ष अपनी व्यथा का निवेदन करना । किन्तु इस कडवक में लोरिक उन दुःखों को स्मरण करता है जिनको उसे चांदा के प्रेम में सहन करना पड़ा है ।

कडवक ३२६ : मै० : शिरीनी क़ुबूल कर्दने लोरिक बर गुनी रा—लोरिक का गुणी को मिठाई [देना] स्वीकार करना । कडवक में मिठाई देना स्वीकार करने का कोई प्रसंग नहीं है, प्रसंग है आभूषणों को देना स्वीकार करने का । हो सकता है कि 'शिरीनी' के स्थान पर शुद्ध पाठ 'ज़रीनः' = 'आभूषण' रहा हो ।

कडवक ३२८ अ ख : म० : चूं लोरिक तुरा रोज़ बद उफ़्तद मरा याद कुन = लोरिक जब तुझ पर बुरा दिन आए तो तू मुझे स्मरण कर । किन्तु किसने लोरिक से यह कहा, यह शीर्षक में नहीं आता है ।

कडवक ३२८ अ च (दे० परिशिष्ट) : म० : चूं शुनीद लोरिक कि दस्त पा बुरीदः बर दरस्त = जब लोरिक ने सुना कि हाथ-पांव क्रूरता से कटे हैं । किन्तु कडवक में हाथ-पांव कटे होने की बात नहीं आती है—संभवतः योगी के नाम 'तों ता' को 'टूंटा' पढ़कर और उसकी अर्थ कटे हुए हाथ-पांव वाला समझ कर यह अर्थ लगाया गया है । किन्तु बाद वाले कडवक में ही कहा गया है कि जब आंखें निकाल कर तोंता लोरिक की ओर झपटा तो लोरिक डरा कि वह उसे खा जाएगा । यदि उसके हाथ-पांव कटे होते तो लोरिक की ओर उसका इस प्रकार झपटना कैसे संभव होता ?

कडवक ३२८ अ ज (दे० परिशिष्ट) : म० : दरमियान जोगी व लोरिक गुफ़्तगू शुदन = योगी और लोरिक के बीच वार्तालाप होना । किन्तु यह वार्तालाप योगी (तोंता) और लोरिक के बीच नहीं हुआ है, उस सिद्ध और लोरिक के बीच हुआ है जिसने चांदा के स्वप्न में तोंता के द्वारा उस के अपहृत होने पर लोरिक को सहायता का वचन दिया था ।

कडवक ३२८ अ झ : म० : गुफ़्त जोगी ई ज़न मन अस्त = योगी ने कहा कि यह स्त्री मेरी है । किंतु कडवक में सभासदों (पंचों) के द्वारा लोरिक से किया गया यह प्रश्न है कि वे दोनों कौन थे, वह स्त्री लोरिक को कहां मिली थी, और वे दोनों घर छोड़ कर किस कारण निकले थे—आदि ।

कडवक ३२९ : मै० : आख़िर बिसहरखंड चंद सुख़न फ़रमूदने मौलाना नत्थन = विषहर खंड का अंत और मौलाना नत्थन का कुछ वाक्य तिवेदन करना । किन्तु कडवक में मौलाना नत्थन का कुछ कहने का प्रसंग नहीं है; दाऊद ने मलिक (मौलाना नहीं) नत्थन को संबोधित करते हुए कहा है कि उन्होंने यह दुःख-वार्ता उभाड़ी थी, इसलिए वे इस गुणमयी वार्ता को कान देकर सुनते ।

कडवक ३७२-३७३ : मै० : कैफ़ियत आवरदने बनिज गुफ़्तने सुरजन

पेश लोरिक=सुरजन का लोरिक के आगे अपने बनिज का हाल लाना। किन्तु इन कडवकों में सुरजन ने लोरिक से बताया है कि कुंवरू उसे किस प्रकार अपने घर बुला ले गया था और तब मैनां ने यह जानने पर कि वह हरदीं आ रहा था आत्मघात करने का भय दिखाते हुए उस से अपना बनिज छोड़ कर उसका सन्देश लादने का अनुरोध किया था।

कडवक ३८७ : मै० : रफ़्तने मैनां बा सहेलियान दरबेगां व तलबीदने लोरिक=सहेलियों के साथ मैनां का बेगां में जाना और लोरिक का उस को बुलाना। किन्तु 'बेगां' कोई स्थान नहीं है, कडवक में 'बेगां' 'शीघ्रता से' अथवा 'सबेरे' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

कडवक ३८९-३९० : म० : में इन कडवकों का शीर्षक वही बताया गया है जो इसके पूर्ववर्ती का है : अर्थात् ख़रीदने लोरिक शीर व देहानीदने माल बर लोरिक मैनां रा=लोरिक का दूध मोल लेना और लोरिक का मैनां को द्रव्य दिलाना। किन्तु इन कडवकों में लोरिक का मैनां से छेड़छाड़ करना तथा उसके सन्दर्भ में मैनां का उसे बुरा-भला कहना और अपना पति-वियोग निवेदन करना वर्णित है।

कडवक ३९१ : मै० : बाज़ रफ़्तने मैनां दर बेगां बासहेलियान ख़ुद—मैनां का सहेलियों के साथ बेगां में वापस जाना। यहां भी 'बेगां' किसी स्थान का नाम समझा गया है, जो अशुद्ध है; इस कडवक में दूसरे दिन उनका पुनः देवहां पहुंचना कहा गया है, जहां पर लोरिक आकर ठहरा हुआ था।

कडवक ३९४ : मै० : ख़बर कुनानीदने लोरिक दर शहर गोवर अज़ आमदने ख़ुद=लोरिक का अपने आने का समाचार गोवर नगर में करवाना। किन्तु इस कडवक में कहा गया है कि मैनां के इस परदेसी के यहां रात्रि में रह जाने की बात जब गोबर में फैली, खोलिन के अनुरोध पर अजई इस दुराचारी परदेसी को दण्ड देने पहुंचा और दोनों में युद्ध छिड़ गया, किन्तु फिर एक-दूसरे को पहचान लेने पर वे गले मिले।

ऊपर मै०, म० भो० तथा शि० के फ़ारसी शीर्षकों में आई भूलों को हमने देखा है; शेष प्रतियों में से का० में केवल छः कडवक प्राप्त हैं, मसा० में दो ही, इसलिए उनमें भूलें नहीं मिलती हैं तो आश्चर्य न होगा। बी० में कुछ शीर्षक पाठ के साथ आते हैं—और वे केवल तीन हैं : कडवक १-३—सिफ़ति धणी की; २६—सिफ़ति रावताह की; ३४७—बारामासा। हाशिये में किसी अन्य व्यक्ति के दिए हुए चौदह शीर्षक और आते हैं : कडवक ८—साहि पेरोज की सीफत; १८—गोवर की बरनी; ३२—चांदा कौ जनमु;

३८—चांदा बावनै दीनी; ४०—बरात चाली; ४२—बीवाह हुवौ; ४९—चांदा नै लेन गया; ५४—बाजुर आमद जोगी; ६०—बाजुर रूपचंद कै राजपुरी [चाला ?]; ८७—रूपचंद बाठा आया; ११२—लोरिक महर की भीर लडन आया; १३६—चांदा ले(लो)रीक दीठ·····; १४२—जैनार; २५१—मैनां चांद जुध। ये सभी शीर्षक अनियमित रूप से दिए गए हैं, इसलिए ये निश्चित रूप से कवि के दिए हुए नहीं हो सकते हैं।

ऊपर दिए हुए तथ्यों के आधार पर प्रस्तुत कार्य में पूरी कथा को खंडों में विभक्त किया गया हैं, और प्रत्येक खंड का शीर्षक भी सुझाने का यत्न किया गया है। फ़ारसी सुर्ख़ियों का उल्लेख मात्र कडवकों का निर्धारित पाठ देने के अनंतर कर दिया गया है। किंतु खंडों का यह विभाजन पूर्णतः निश्चयात्मक न होने के कारण कडवकों की क्रम-संख्या पूरी रचना की रक्खी गई है।

इसके बाद केवल यह समझना शेष रह जाता है कि प्रस्तुत काव्यरूप फ़ारसी मसनवी का है अथवा भारतीय कथा आख्यायिका का। लेखक मुसलमान था, सुर्ख़ियां फ़ारसी में मिलती हैं और मुसलमान लेखकों की आध्यात्मिक संकेतों से समन्वित कथाएं मसनवियों के रूप में ही मिलती हैं, इसलिए यह एक व्यापक विश्वास रहा है कि दाऊद की रचना फ़ारसी मसनियों की परंपरा में आती हैं, किन्तु मेरा मत इससे भिन्न है।

फ़ारसी में मसनवियां प्रायः अपने विषयों के अनुसार पांच प्रकार के ऐसे छंदों में लिखी गई हैं जिनमें दो-दो चरण समान तुकों के होते हैं और जो एक शृंखला में प्रयुक्त किए जा सकते हैं। इन छंदों की संख्या निश्चित नहीं होती है। मसनवियों के विषय भी अनेक हो सकते हैं—ऐतिहासिक, पौराणिक, दार्शनिक, सदाचार-निरूपक, रहस्यवादी अथवा धार्मिक। यह भी आवश्यक नहीं है कि पूरी रचना में कथा एक ही हो : मौलाना रूम की मसनवी में एक-दूसरे से स्वतंत्र अनेक कथाएं हैं, और ये सभी छोटी-बड़ी कथाएं अपने-आप में पूर्ण हैं। फिर भी बाहुल्य ऐसी मसनवियों का है जिनमें आदि से अंत तक कथा एक है। बड़ी मसनवियां प्रायः हम्द (ईश्वर-वंदना) से प्रारंभ होती हैं, तत्पश्चात् उनमें नात (रसूल की वंदना) होती है और उनके मेराज का उल्लेख आता है; तत्पश्चात् समसामयिक शासक या किसी महान् व्यक्ति की दुआ (स्तुति) और पीर की ख़िताब की जाती है, रचना को प्रस्तुत करने के कारणों का उल्लेख किया जाता है, और किसी को संबोधन होता

है। मूल रचना में विभिन्न प्रसंगों का विषय-निर्देश करने वाली सुखियां दी जाती हैं, जो कि प्रायः उनके शीर्षकों के रूप में होती हैं।[२२]

भारतीय साहित्य में 'आख्यायिका' और 'कथा' दो ऐसे साहित्य-रूप हैं जो इस प्रसंग में विचारणीय हैं। प्राचीन साहित्य-शास्त्रियों ने गद्य में प्रस्तुत किए गए साहित्य-रूपों के अन्तर्गत कथा-कृतियों को दो प्रकार की बताया है: आख्यायिका और कथा। कुछ बाद के साहित्य-शास्त्रियों ने कथाओं का प्राकृत गाथाओं में भी लिखा जाना माना है। भामह (काव्यालंकार १.२५-२८) के अनुसार 'आख्यायिका' एक प्रकार का ऐसा साहित्य रूप होता है जो रोचक और उपयुक्त गद्य में प्रस्तुत किया जाता है, यह उच्छ्वासों में विभक्त होता है, इसमें अनुभवपूर्ण तथ्यों का समावेश किया जाता है, इसमें मूल कथा का वक्ता नायक स्वयं होता है, साहित्य-रूप के प्रतीक-स्वरूप इसमें वक्त्र और अपरवक्त्र छंद होते हैं, इसमें कवि को अपनी व्यक्तिगत छाप छोड़ने के लिए यथेष्ट अवसर रहता है; कन्यापहरण, युद्ध, विरह, पुनर्मिलन जैसे विषयों का इसमें समावेश होता है। 'कथा' में वक्त्र तथा अपवक्त्र छंद नहीं होते हैं, और न उच्छ्वास-विभाजन होता है; कथा भी नायक द्वारा नहीं कही जाती है, अन्य व्यक्तियों द्वारा कही जाती है। भामह ने 'आख्यायिका' के लिए भाषा-माध्यम संस्कृत का और 'कथा' के लिए संस्कृत तथा अपभ्रंश का माना है।

रुद्रट (काव्यमाला १६.२०-२७) के अनुसार 'कथा' का आरंभ देवों और गुरुजनों की छंदोबद्ध वंदना से होता है, और उसके अनंतर उसमें लेखक के कुल तथा रचना के उद्देश्य का उल्लेख रहता है; रचना—जिसमें पुर-वर्णन आदि भी सम्मिलित रहता है—प्रवाहपूर्ण तथा आनुप्रासिक गद्य में रची गई होती है, कथारंभ में एक कथान्तर आता है, जिसकी सहायता से मुख्य कथा उपस्थित की जाती है, किसी कन्या की प्राप्ति 'कथा' का सामान्य उद्देश्य होता है और शृंगार रस 'कथा' में पूर्ण रूप से व्याप्त रहता है, इसकी रचना संस्कृत में गद्य में की जाती है, जब कि अन्य भाषाओं में पद्य में होती है। रूद्रट के अनुसार 'आख्यायिका' में भी रचना का आरंभ छंदोबद्ध देव तथा गुरु-वंदना के साथ होता है, साथ ही उसमें पूर्ववर्ती कृतिकारों की प्रशंसा होती है, इसके अनंतर रचना के उद्देश्य के संबंध में स्पष्ट कथन किया जाता है,

---

२२ **विस्तृत परिचय के लिए देखिए डॉ० श्याममनोहर पाण्डेय : 'मध्ययुगीन प्रेमाख्यान', पृ० २५३-६१।**

जो किसी शासक या कृती व्यक्ति का यशोगान भी हो सकता है; लेखक गद्य में अपना और अपने कुल का परिचय देता है। मूल कथा 'आख्यायिका' में भी 'कथा' की ही भांति वर्णित होती है, रचना उच्छ्वासों में विभक्त होती है, और प्रथम उच्छ्वास के अतिरिक्त सभी के प्रारंभ में दो आर्या छंद आते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता होगा कि फ़ारसी 'मसनवी' तथा भारतीय 'आख्यायिका' और 'कथा' में ऐसे अनेक लक्षण मिलते हैं जो एक-से हैं। दोनों सामान्यतः ऐसे छन्दों में रचे जाते हैं जिनमें शृंखलाबद्ध या धारावाहिक रूप से रचना प्रस्तुत की जा सके। विषय भी दोनों के अनेक प्रकार के हो सकते हैं। कथा 'मसनवी' में प्रायः एक होती है, किन्तु अनेक कथाएं भी उसमें रक्खी जा सकती हैं, भारतीय कथा-साहित्य के रूपों में कथा आदि से अन्त तक एक ही रहती है। बड़ी मसनवियों में जिस प्रकार ईश्वर-वंदना, रसूल-वंदना, रसूल के मेराज, समसामयिक शासक या किसी महान् व्यक्ति की प्रशंसा, पीर की खिताब, रचना के कारण और उद्देश्य-कथन आदि का समावेश होता है, भारतीय कथा-साहित्य के रूपों में देव तथा गुरु-वंदना, अपनी परंपरा के पूर्ववर्ती कवियों और कथाकारों का प्रशंसापूर्ण स्मरण, रचना के उद्देश्य का उल्लेख, समसामयिक शासक या कृती व्यक्ति का यशोगान, लेखक के अपने वंश का परिचय आदि होता है। मुख्य अंतर कदाचित् इतना ही होता है कि मसनवियों में जब कि एक ही छंद प्रयुक्त होता है, भारतीय कथा-साहित्य के दोनों रूपों में रचना कडवकों में की जाती है, और जब कि फ़ारसी मसनवियों में प्रसंगों की सुखियां दी जाती है, भारतीय आख्यायिका में उच्छ्वास (खंड)-विभाजन होता है और 'कथा' में वह भी नहीं होता है।

इन दृष्टियों से यदि दाऊद की रचना को देखा जाए तो उसका प्रारंभिक अंश दोनों परंपराओं में खप सकता है और यह भी असंभव नहीं है कि कवि ने इस अंश में दोनों परंपराओं का कोई समन्वय किया हो, किन्तु जहां तक प्रयुक्त छंद-विधान तथा प्रबंध-व्यवस्था की बात है, वह पूर्ण रूप से भारतीय है—उसमें न तो फ़ारसी मसनवियों के छंद प्रयुक्त हुए हैं और न उसमें उनकी छंद-विषयक एक-रूपता है। उसकी रचना प्राकृत-अपभ्रंश

---

२३ **विशेष विवरण के लिए देखिए एस० के० दे : 'दि आख्यायिका ऐंड कथा इन क्लासिकल संस्कृत', बुलेटिन आव दि स्कूल आव ओरिएंटल स्टडीज़, तृतीय वर्ष, अंक ३, पृ० ७५०७-५१७।**

साहित्यों की परंपरा में कडवकों में की गई है, और प्रत्येक कडवक चौपाई की पांच अर्द्धालियों तथा एक दोहे या मिलते-जुलते छंद का है। जो फ़ारसी सुर्खियां उसकी प्रतियों में मिलती हैं, वे कवि की दी हुई नहीं हैं, यह हम ऊपर देख ही चुके हैं। ऊपर यह संभावना भी देखी जा चुकी है कि रचना का संपूर्ण प्रबंध मूलरूप में खंडों में विभाजित था, यद्यपि फ़ारसी सुर्खी-लेखकों ने उन्हें हटा दिया। फलतः मेरा मत है कि यह भारतीय परंपरा का 'कथा-काव्य' है, जिस के प्रारंभ के ही अंश में कुछ ऐसे तत्व आ गए हैं जो मसनवियों में भी मिलते हैं, किन्तु यह साम्य कदाचित् ऊपरी है, जो केवल कवि के मुसलमान होने के कारण इसलिए भी हो सकता है कि उसने दोनों परंपराओं का किसी मात्रा में समन्वय किया हो। मुख्य रचना अपनी फ़ारसी मसनवियों से भिन्न छंद-व्यवस्था, प्रबंध-व्यवस्था, समान आकार के कडवकों के प्रयोग और खंड-विभाजन के कारण भारतीय परंपरा की ही मानी जाएगी।

४. रचना की कथा और उसका आधार

१. स्तुति खंड : (कडवक १—१७)

सृष्टिकर्त्ता, हज़रत मुहम्मद तथा उनके चार यारों के गुण-कीर्त्तन के साथ ग्रंथ का आरंभ किया गया है, तदनंतर शाहे वक़्त फ़ीरोज़शाह और अपने गुरु ज़ैनुद्दीन का कवि ने स्तवन किया है और खानजहां की सत्य और न्याय-निष्ठा की प्रशंसा की है, जो फ़ीरोज़शाह का वज़ीर था। मलिक मुबारक के शौर्य की इसी भांति प्रशंसा की गई है, जो डलमऊ का मीर था। फिर कवि ने कहा है कि दिल्ली के सुल्तान फीरोज़शाह के समय में, जिसका वज़ीर जौनाशाह था, डलमऊ नगर में, जिसका मीर मलिक बया का पुत्र मलिक मुबारक था, ७८१ हि० में उसने ग्रंथ की रचना की।

२. गोवर-वर्णन खंड (कड० १८—३१)

गोवर की राज-वाटिका, उसके पक्षियों, वहां के मढ़-मंदिरादि, वहां के सरोवर, उसके आश्रित रहने वाले जल-पक्षियों, वहां की खाई, वहां के परकोटे, वहां निवास करने वाली जातियों, वहां के कुमारभुक्तों, वहां की हाटों में बिकने वाले फूलों, फलों, मेवों, वस्त्रों, वहां के खेल-तमाशों, स्वांगों, नृत्यों, उत्सवों, महर के सिंह-द्वार, महर के धवलगृह, तथा उसकी रानियों और पट्टमहिषी फूलारानी का वर्णन किया गया है।

३. चांदा-जन्म एवं विवाह खंड (कड० ३२—४२)

कहा गया है कि इसी गोवर में महर सहदेव के घर पद्मिनी जाति की सुंदरी कन्या के रूप में चांद (चन्द्र) का अवतार हुआ। उसकी छठी हुई। जब

वह बारहवें मास की हुई, तभी से उसके सौन्दर्य की ख्याति धुर समुंद (द्वार समुद्र), माबर, गुजरात, तिरहुत, अवध, बदायूं [आदि] तक जा पहुंची और विवाह के लिए सन्देश आने लगे। जब वह चार वर्ष की हुई, जइत नाम के सजातीय ने अपने पुत्र बावन के साथ उसका विवाह करने के लिए उसे कहलाया। महर ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। धूम-धाम से बारात आई, विवाह हुआ और बहुतेरा दायज देकर महर ने उसे विदा किया।

४. चांदा-पितृगृह-आगमन खंड (कड० ४३—५३)

विवाह के बारह वर्षों के बाद जब चांदा सोलह वर्ष की हुई, उसको अपने पति सिउहर के संबंध में दुःख होने लगा। वह क़द में छोटा (इसीलिए बावनः वामन) था, एक आंख से काना था, गंदगी के साथ रहता था और [कदाचित् नपुंसक होने के कारण] चांदा से दाम्पत्य-संबंध न रखता था। एक वर्ष तक चांदा ने उसका यह व्यवहार देखा, तो उसने ननद से कहा, जिसने अपनी माता से चांदा की बातें कहीं। सास ने पहले तो समझाया किन्तु फिर कह दिया कि [यदि उसे संतोष न हो तो] वह सन्देश भेज कर अपने मायके को चली जाए। महर को जब चांदा का सन्देश मिला, उसने लड़के को भेजकर उसे घर बुला लिया। चांदा से उसकी सखियों ने उसके स्वामी के व्यवहार के बारे में पूछा, तो [कदाचित् प्रतीक रूप से] माघ, ज्येष्ठ तथा भादों के कष्टों का वर्णन करते हुए[२४] उसने बताया कि किस प्रकार वह उसके द्वारा उपेक्षित रही।

५. बाजुर-मूर्छा खंड (कड० ५४-५६)

इसी समय बाजुर नाम का एक भिक्षुक गोवर आया, जो गा-बजाकर उदर-पूर्ति के लिए भिक्षा मांगता-फिरता था। एक दिन उसने धवलगृह के झरोखे से झांकती हुई चांदा को देखा, तो वह मूर्च्छित हो गया। लोगों ने उससे जब इस मूर्छा का कारण पूछा, उसने एक प्रहेलिका की सहायता से उत्तर दिया और वह दण्ड-भय से वहां से भाग निकला।

६. चांदा-शृंगारवर्णन खंड (कड० ६०—८५)

एक मास तक चलकर वह राव रूपचंद के नगर राजपुर में पहुंचा। वहां रात में उसने तंत्री बजाई और 'चंद्रावली का गीत'[२५] गाया, जो कि नगर भर

---

[२४] **'मृगावती' में भी ठीक इसी प्रकार कुँअर की इन्हीं तीन मासों की विरह-व्यथा का वर्णन किया गया है (दे० प्रस्तुत लेखक द्वारा संपादित मृगावती छंद ३४—४१।)** [२५] **बाद में यही कथा कुतुबन के द्वारा 'मृगावती' नाम से प्रस्तुत की गई है। बंगला तथा प्राचीन असमी में इसके दोनों नाम सुरक्षित हैं: द्विज पशुपति की रचना 'चंद्रावली' है, द्विजराम की 'मृगावती'।**

में गूंज उठा। दिन होने पर राजा ने उसे बुलवाया और गीत-नाद-सुर-कविता-कहानी द्वारा मनोरंजन करने के लिए उसे सेवा में रख लिया। बाजुर ने उसे अपना परिचय देते हुए कहा कि वह उज्जैन का था। फिर उसने चांदा के रूप की प्रशंसा की, और रूपचंद के आदेश पर विस्तार से उसका शृंगार-वर्णन किया। उसने क्रमशः उसके मांग से लेकर चरणों तक के उसके विभिन्न अंगों, उसकी काया-यष्टि, उसके वस्त्रों तथा आभरणों आदि का वर्णन किया। खंड को समाप्त करते हुए किसी 'मुहम्मद' को कवि ने संबोधन किया है।[२६]

७. गोवर-अभियान खंड (कड० ८६–१०१)

इस शृंगार-वर्णन को सुनते ही राव रूपचद ने गोवर पर आक्रमण करने का आदेश दिया। उसकी पदाति-सेना, अश्व-सेना और गज-सेना ने प्रयाण किया। प्रयाण के समय उसे कुछ अपशकुन हुए, किन्तु उन पर ध्यान न देते हुए उसने गोवर को जा घेरा। इस सेना ने पेड़ों-पौदों को काट डाला और मठों-देवालयों और अमराइयों में आग लगा दी। महर ने जब यह देखा, तो उसने राव रूपचंद के पास बसीठ भेजे। उनके पूछने पर राव रूपचंद ने बताया कि चांदा का विवाह उसके साथ कर दिया जाए, वह इसलिए आया था। बसीठों ने कह दिया कि यह असंभव था और महर युद्ध के लिए प्रस्पुत था। फिर भी रूपचंद ने उनके द्वारा अपना सन्देश भेजा। उन्होंने लौट कर महर को उसका सन्देश दिया। महर ने कुमारभुक्तों को बुलाकर उनसे परामर्श किया। कुछ ने तो चांदा को दे देने का समर्थन किया किन्तु कुंवरू और धंवरू ने इसका विरोध किया और युद्ध के लिए प्रस्तुत होने की सम्मति दी। उन्हीं की बात मानी गई।

८. गोवर-युद्ध खंड (कड० १०२–१२४)

महर की ओर से कुंवरू आगे बढ़ा, रूपचंद की ओर से उसका प्रमुख योद्धा वीर बांठा आया; बांठा के प्रहार से कुंवरू धराशायी हुआ। अब धंवरू आगे आया, और वह भी बांठा के प्रहार से धराशायी हुआ। इन दोनों के गिरने पर महर के कुमारभुक्तों का साहस जाता रहा। यह देख कर महर ने लोरिक के पास संदेश भेजा, जिसने युद्ध में भाग लेना स्वीकार कर लिया। उसने रण-सज्जा की। उसकी माता तथा स्त्री मैंना ने उसे रोका, किन्तु फिर

[२६] **प्रसंग की इस प्रकार की समाप्ति से लगता है कि प्रसंग पूरे एक खंड का विषय था।**

उन्होंने उसे हर्षपूर्वक विदा दी। तदनंतर लोरिक अपने गुरु (?) अजई के पास गया, जिसने युद्ध में न सम्मिलित होने के लिए आहत होने का स्वांग कर रक्खा था। लोरिक उससे शास्त्रास्त्र-संचालन की युक्ति लेकर विदा हुआ। लोरिक महर की सेवा में उपस्थित हुआ, तो महर ने उसे विजय-प्राप्त करने पर बहुत-कुछ देने का वचन और पान का बीड़ा देकर रण-धरा में भेजा। लोरिक के उतरते ही महर की सेना लौट पड़ी, और वहां डटकर स्थित हो गई। महर ने भी अब युद्ध की पूरी तैयारी की। उसकी सभी प्रकार की सेनाएं सज्जित हो गईं। [यह देखकर] रूपचंद ने महर के पास यह कहलाया कि अब युद्ध एक-एक से एक-एक का हो, तीसरा कोई निकट न जाए। महर ने यह स्वीकार कर लिया, तो रूपचंद की ओर से (क्रमशः) सींह और सिंगार आगे आए। कुंवरू के चेर (पुत्र ?) ने सींह को खदेड़ दिया। अब सिंगार आगे बढ़ा तो वह भी धराशायी हुआ।

इसके बाद क्रमशः ब्रह्मदास और धरमूं रूपचंद की ओर से आगे आए। ब्रह्मदास को मार कर [कुंवरू के] चेर (पुत्र ?) ने धरमूं को भी समाप्त कर दिया। तदनंतर रणमल आगे बढ़ा, जिसने कुंवरू के पुत्र को मारा। यह देखकर महर ने रणपति को आगे बढ़ाया, जिसने रणमल को समाप्त कर दिया। रूपचंद की ओर से अब सिरीचंद आगे आया, जिसे रणपति ने पाखर पर आघात कर आहत किया। तदनंतर अजयराज ने उस पर एक बेलक (बाण) छोड़ा, जो उसकी पाखर में रह गया। सिरीचंद भाग निकला। रूपचंद ने बांठा से परामर्श की, तो उसने तीस पाखरित योद्धाओं को युद्ध में प्रवृत्त करने का वचन दिया। जब उनकी सेना बांठा रण-धरा में लाया, तो महर ने लोर से उसका सामना करने का अनुरोध किया। एक घड़ी तक तुमुल युद्ध हुआ, रूपचंद की सेना बहुत नष्ट हुई, उसके सिर पर कुंत (भाला) लगा, और बांठा भाग खड़ा हुआ। बांठा की सम्मति लेकर रूपचंद ने एक बार अपनी पूरी सेना को चलाया, किन्तु वह सेना भी भाग निकली। तब बांठा सौ पाखरित योद्धाओं को लेकर रण-धरा में उपस्थित हुआ। उसका सामना महर से हुआ; उसने महर पर प्रहार किया तो महर का सन्नाह टूट गया, और उसका खड्ग छिटक कर भूमि से जा लगा। अब लोर सामने आया। उसके प्रहार से रूपचंद भाग निकला; फिर उसने महीराज, सिरीचंद, भुइंराज और बीरराज को समाप्त किया। यह देखकर बांठा आगे आया। वीरतापूर्वक युद्ध करता हुआ जब वह धराशायी हुआ, लोरिक उसका सिर काट कर ले चला। यह देखकर रूपचंद की सेना भाग निकली। लोरिक ने

उसका पीछा किया। रूपचंद ऐसा भागा कि फिर गोवर पर आक्रमण करने का वह नाम भी न लेता।

९. चांदा-लोर प्रथम दर्शन खंड (कड० १३५–१५३)

इस विजय का महर ने उत्सव मनाया, और उसमें लोरिक को एक हाथी पर चढ़ा कर सामंतों के साथ नगर भर में घुमाया। चांदा को इस गोवर का उद्धार करने वाले को देखने की साध हुई और उसने अपने धवलगृह पर से उसका दर्शन किया। उसे देखते ही वह लोरिक के स्नेह से अभिभूत हो गई। उसकी धाय बृहस्पति ने दूसरे दिन उसके इस प्रकार रोमांच में आने का कारण पूछा, तो चांदा ने बताया और उससे पुनः लोरिक को दिखाने का अनुरोध किया। इसके लिए बृहस्पति ने उक्त विजयोत्सव के प्रसंग में पिता से एक बृहत् ज्यौनार आयोजित कराने का सुझाव दिया, जिसमें लोर को आमंत्रित किया जाता। चाँदा के अनुरोध पर महर ने एक बड़े ज्यौनार का आयोजन किया। लोरिक तथा पूरे नगर के लोग इस ज्यौनार में सम्मिलित हुए। जब चांदा पुनः शृंगार करके धवलगृह के ऊपर [लोरिक को देखने के लिए] आई, लोरिक की दृष्टि उस पर पड़ी और वह चांदा के सौन्दर्य से अभिभूत होकर सुधि-बुधि खो बैठा। उसे डांडी पर लेकर उसके घर पहुंचाया गया।

१०. चांदा-लोर-पुनर्दर्शन खंड (कड० १५४–१८०)

लोरिक ने घर जाकर खाट ले ली। वैद्यों ने बताया कि वह काम-विद्ध था। संयोग-वश जब बृहस्पति उसके घर पर गई और उसने उसकी यह दशा देखी, उसने कारण पूछा। माता के वहाँ होने के कारण कारण बताने में लोरिक संकोच कर रहा था। माता हट गई, तब उसने कारण बताया और चांदा से मिलाने का उससे अनुरोध किया। बृहस्पति ने बताया कि चांदा से मिलना दुर्गम था। लोरिक ने उसके पैरों पर पड़ कर इस कार्य में उसकी सहायता करने का अनुरोध किया, तो उसने यह युक्ति बताई कि वह तपस्वी के रूप में होकर [निर्धारित] मंदिर में रहे, तो वह देव-दर्शन के मिस से उस मंदिर में चांदा को ला कर उसे मिला देगी। यह युक्ति बताकर वह चांदा की सेवा में चली गई। लोरिक तपस्वी का वेष बनाकर उस मंदिर में जा बैठा, वह कंद-मूल-फल खाता और चांदा का नाम जपता। एक वर्ष तक वह उस मंदिर में रह कर देवता की पूजा करता रहा। जब दीपावली का पर्व आया, चांदा ने बृहस्पति को बुलाया और साठ सखियों को लेकर वह

उस देव-मंदिर में गई। संयोग से उसका हार टूट गया। जब उसकी सखियां हार के मोतियों को उठा कर पुनः हार गूंथने में लगीं, बृहस्पति उसको मंदिर की छाया में ले गई। इसी समय उसकी कुछ सहेलियों ने किसी रूपवान् राजपुत्र-योगी के वहाँ होने की सूचना दी। चांदा ने जैसे ही उसके पास जाकर उसे सिर झुकाया, तपस्वी अचेत हो गया और चांदा वापस चली आई।

घर आकर चांदा अनमनी हो रही थी, उसने बृहस्पति से कोई रस-वार्त्ता कहने का अनुरोध किया तो उसने रस-कुंड में डूब कर मरते हुए उस तपस्वी को उबारने की बात कही। चांदा ने उसे ऐसा कहने से मना करते हुए कहा कि वह तो उसी दिन से लोरिक की हो चुकी थी जिस दिन से उसने उसे देखा था। बृहस्पति ने बताया कि मंदिर में जिस तपस्वी को उसने देखा था, वह वही लोरिक था। चांदा ने कहा कि तब वह तत्काल जाकर उसे उठाए और उस विरहाभिभूत तपस्वी को आश्वासन दे कि उसकी आशा पूरी होगी। बृहस्पति ने जाकर जब लोरिक को सांत्वना दी, तो वह उसके पैरों पर गिर कर चांदा से मिलाने का अनुरोध करने लगा। उसे आश्वासन देकर बृहस्पति चांदा के पास चली गई और लोरिक भी मंदिर से चला गया।

११. धवलगृह-आरोहण खंड (कड० १८०–१९६)

अब लोरिक इधर-उधर भटकता रहता था, घर में नहीं आता था, यह देख कर मैनां ने उससे चित्त को स्थिर करने और मन को शांत करने के लिए अनुनय-विनय की, किन्तु उसका कुछ असर न हुआ। दिन भर वह वनखंड में फिरता और रात में गोवर चांदा की झलक पाने की लालच से आता। चांदा भी लोरिक से मिलने के लिए छटपटाती रहती। उसने बृहस्पति से लोरिक को मिलाने का उपाय करने को कहा। बृहस्पति वनखंड में जाकर लोरिक से मिली, और उसने चांदा के धवलगृह पर किसी युक्ति से चढ़ कर उससे मिलने की राय दी। अनुरोध करने पर बृहस्पति ने उसे साथ ले जाकर चांदा के धवलगृह का मार्ग दिखा दिया। लोरिक ने एक मजबूत बरहा (रस्सा) पटसन का बनाया, और उसमें एक लोहे की आंकड़ी लगाई, जो धवलगृह पर फेंकने पर कहीं फँस सकती। भादों की छठी की रात को, जब वर्षा हो रही थी, वह निकल पड़ा। उस समय कुछ सूझ नहीं पड़ रहा था, किन्तु बिजली के प्रकाश में उसे चांदा का धवलगृह दिखाई पड़ गया। उसने आगे बढ़कर उसके ऊपर बरहा फेंका। चांदा जाग गई। नीचे जब लोरिक को देखा तो उसने बरहा छिटका दिया। चांदा ने कई बार ऐसा ही किया, तो लोरिक ने अंतिम रूप से एक बार और उसे फेंकने का संकल्प किया।

चांदा ने सोचा कि बार-बार ऐसा करने से लोरिक चला जाएगा, इसलिए इस बार फेंके जाने पर बरहे की आंकड़ी को उसने एक खंभे से अटका दिया और चुपचाप जाकर पलंग पर लेट गई। अब वह वीर उस बरहे के सहारे धवलगृह पर चढ़ आया। खंभे की प्रतिच्छाया में खड़े होकर उसने चांदा की सुसज्जित और सुचित्रित चौखंडी का निरीक्षण किया। ईंगुर वर्ण की उस चौखंडी में सोने के पानी से अनेक प्रकार के चित्र उरेहे हुए थे, भांति-भांति के सुगंधित द्रव्य, ताम्बूलादि और खाद्य-पदार्थ रक्खे हुए थे, और एक पुष्पालंकृत शैया पर चांदा विश्राम कर रही थी। चीर के हट जाने से उसके स्तन दिखाई पड़ रहे थे; बार-बार वह उसे जगाने की सोचता था, किन्तु इसके लिए उसका साहस नहीं पड़ता था।

१२. चांदा-लोर-संवाद खंड (कड० १९७–२११)

अंत में उसने उछल कर चांदा का हाथ जा पकड़ा। चांदा जाग गई और उसके केश पकड़ कर 'चोर-चोर' पुकारने लगी, किन्तु कोई न जागा। चित्त में वह प्रसन्न हुई कि वह उसे मिल गया था। लोरिक ने कहा कि वह चोर नहीं था, अन्यथा वह उसके आभरण लेकर चला जाता, वह उसका प्रेमी था, और वह अपने प्राण गंवा कर भी उससे प्रेम करना चाहता था। चांदा ने कहा कि वह अपनी मृत्यु को धोखा देकर आया था, और यदि बिस्तर पर उसने पैर रक्खा तो उसने अपने प्राण गंवाए। लोरिक ने कहा कि वह तो मर कर इस स्वर्ग में आया था, और तभी मर गया था जब उसने उसका दर्शन किया था, फिर मरे को मारने की बात कैसी थी? लोरिक की इस बात को सुनकर चांदा को ममता आई और उसने उसके केश छोड़ कर उसका अंचल पकड़ा और उसका परिचय मांगा। उसने बताया कि वह वही कूंकू लोर था, जिसने उसको [रूपचंद के] ग्रहण से उबारा था, और जो उसके लिए प्राणों पर खेला था। इसके अनंतर चांदा ने लोरिक से उसके प्रेम-निवेदन की सत्यता का प्रमाण चाहा, और उसके उत्तर में लोरिक ने वह प्रमाण प्रस्तुत किया। [कवि के प्रेम-दर्शन को भली-भांति समझने के लिए यह संवाद अत्यधिक उपयोगी है और बाद के शीर्षक में विस्तार से इसका विश्लेषण किया गया है, इसलिए इसे वहां देखा जा सकता है।] लोरिक ने कहा कि ज्यौनार के दिन उसको जब उसने देखा था, उसके स्नेह ने उसे अभिभूत कर लिया था; उसके स्नेह का विटप उसके हृदय में उसी दिन आ लगा था; वह विटप धरती से आकाश तक बढ़कर ही रहने वाला था, भले ही उसके कारण उसका जीव जाता। चांदा ने भी स्वीकार किया कि उसकी

विजय-संबंधी शोभा-यात्रा में जिस दिन उसे उसके दर्शन हुए थे, उसी दिन उसने उसके पेट में प्रविष्ट होकर उसके प्राण निकाल लिए थे, और ज्यौनार भी उसी ने उसे भरपूर देखने के लिए कराई थी। इस समय जो कुछ उसने किया था, वह उसके स्नेह की परीक्षा मात्र लेने के लिए किया था।

१३. चांदा-लोर-मिलन खंड (कड० २१२–२२५)

चांदा के इस अमृत-वचन को सुनकर लोर प्रसन्न हो गया, और उसने चांदा का अंचल पकड़ा, किन्तु ऐसा करते ही चांदा का मुक्ता-हार टूट गया। चांदा ने उसके मोतियों को बीन कर देने के लिए कहा, जिसमें वह रात बीत ही गई; दिन हुआ तो चांदा ने उसे शैया के नीचे छिपा दिया। दूसरी रात को कुछ कथोपकथन होने के बाद शैया में दोनों मिले और 'काम-तृप्ति-लाभ कर दोनों बहुत अपूर्व हो गए; उनके पंचभूत और आत्मा शीतल हो गए।' दूसरे दिन भी चांदा ने लोरिक को शैया के नीचे छिपा रक्खा। किंतु चांदा की सखियों ने उसकी अस्त-व्यस्त वेष-भूषा के साथ ही देखा कि उसके नेत्र आनंद से रतनारे हो रहे थे, जैसे उन्होंने तांबूल खाया हो, अतः वे समझ गईं कि फूल पर भ्रमर बैठ चुका था। यह भांप कर चांदा ने बहाना किया कि रात में उस पर बिल्ली कूद पड़ी थी, जिसके कारण ऐसा हो गया था। जब यह समाचार उसके माता-पिता को मिला, वे भी कन्या को देखने आए। लोरिक इन परिस्थितियों में शैया के नीचे पड़ा हुआ अपनी आसन्न-मृत्यु की कल्पना कर रहा था, उसका रक्त सूख गया था, बिना जीव का हुआ वह अपनी काया को भी न जान रहा था। जब पुनः रात्रि हुई, चांदा ने अमृत छिड़क कर उसको जीवित किया। अपनी मृत्यु को लोरिक अपने नेत्रों से देख चुका था जो कि, यह आश्चर्य की बात थी, आकर लौट गई थी। चांदा ने उसे ढाढ़स दिया, कि वह अपने मन में चिन्ता न करता क्योंकि अब वह उसकी विवाहिता-जैसी हो चुकी थी। चांदा उसे पहुंचाने आई, तो पौरिया पैरों की आहट पाकर जाग पड़ा; चांदा उसे छिपाते हुए बोली कि वह चेरियों को फूल बीनने को फुलवाड़ी में भेजने के लिए बुलाने जा रही थी; यह सुनकर पौरिए ने पौरी खोल दी और लोरिक वीर भाग निकला। चांदा जब पुनः अपनी चौखंडी पर चढ़ गई, पौरी लगा दी गई। जब लोरिक घर पहुंचा, तो मैना ने प्रश्न किया कि रात उसने किस नारी के गले में बाहें डाल कर व्यतीत की थी; लोर ने कहा कि उसने राधा की रास कछाई थी, उसी को देखते-देखते रात बीत गई थी। चांदा ने धवलगृह पर चढ़ कर देखा कि लोरिक अपने घर पहुंच गया था। फिर उसने ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति को

देखकर समझ लिया कि दोनों गंगा को पार कर जब हरदीं जाएँगे, तभी वे मिल सकेंगे।

१४. मैनां समाधान खंड (कड० २२६–२४३)

चांदा-लोरिक का यह प्रेम-प्रसंग गोपित न रह सका था; मैनां ने सुना तो लोरिक से सांकेतिक रूप से अपनी व्यथा उसने कही। खोलिन ने मैनां से उसकी प्रत्यक्ष व्यथा का कारण पूछा। चांदा-लोरिक के प्रेम की चर्चा की ओर उसने संकेत किया, फिर उसे बताया कि किस प्रकार भ्रमर कमल-कलिका की बात भी नहीं पूछता था और केतक (केवड़े) की सुगंध पर अनुरक्त हो गया था [जिससे वह अपने को संकट में डाल रहा था]। खोलिन से फिर उसने बताया कि लोरिक चांदा की अटा पर जाकर उससे रमण करता है, और समझाने पर भी नहीं सुनता है। रात बीतने पर लोरिक लौटा, तो देखा कि मैनां रुष्ट थी और रो रही थी। लोरिक को यह अनुमान हो गया कि मैनां ने उसके नए प्रेम-प्रसंग के विषय में कुछ सुना था और उसकी मनुहार करने लगा। मैना ने जब चांदा के साथ उसके प्रेम-प्रसंग की चर्चा चलाई, उसने स्वर्ग जैसे धवलगृह पर पहुँचने की असंभावना का कथन किया, और कहा कि इस प्रकार यदि वह उसे स्वर्ग भेज रही थी तो उससे मिलना कैसा था? जब खोलिन ने लोरिक के आने का समाचार पाया, वह दौड़कर आई और उसने बुरा-भला कहकर दोनों में मेल कराया। मैनां ने फिर लोरिक को चांदा से प्रेम करने का उलाहना दिया, तो लोरिक ने कहा कि केवल दूसरों के कहने पर वह न जाए, क्योंकि उससे अधिक कोई भी स्त्री उसके मन में स्थान नहीं पा सकती थी। मैनां ने इस पर चांदा की तुलना में अपने सौन्दर्य की अधिकता बताई, तो लोरिक ने उसे शांत किया और मैनां ने भी उसका स्नेह-सत्कार किया। किन्तु घर से बाहर होते ही लोरिक पुनः जैसे का तैसा हो गया।

१५. चांदा-मैनां-विवाद खंड (कड० २४४–२६५)

आषाढ़ी आई तो गोवर की अन्य स्त्रियों के समान चांदा भी मनोकामना-पूर्ति के अभिप्राय से सोमनाथ की पूजा के लिए अपनी सखियों को लेकर सोमनाथ के मंदिर में गई। सुन्दरी चांदा को देखकर देवता की सुधि-बुधि जाती रही। लोरिक को पति के रूप में प्राप्त करने के विषय में उसने देवता से मान्यता की। तब तक अपनी सखियों की टोली लेकर मैनां भी वहाँ जा पहुंची, जो शोक-संताप के कारण कृष्ण वर्ण की हो रही थी। उसने देवता की पूजा कर उससे याचना की कि जो स्त्री अपनी शैया को छोड़ कर अन्यत्र दौड़ती

रहती है, उसे वह खा जाए। जब चांदा और मैनां मिलीं, उनमें विवाद छिड़ गया। फिर दोनों में हाथा-पाई की नौबत आ गई, जिसके परिणाम-स्वरूप दोनों के आभरण और वस्त्र टूटे और फटे और चांदा घर जाने को लौट पड़ी। यह देखकर मैना ने चांदा का चीर पकड़ कर खींचा, तो वह विवस्त्रा हो गई। मैनां ने जब जी-भर उसकी दुर्गति कर ली, तब उसका रोष ठंडा हुआ। किन्तु वे पुनः परस्पर भिड़ गईं। वे ऐसी विवस्त्रा हो रही थीं जैसे वे नदी या सरोवर में डूबने चल पड़ी हों। तब तक लोरिक आ पहुँचा था। उसने दोनों को समझा-बुझाकर शांत किया और दोनों को अकवारों में भरा। दाऊद ने लिखा है कि ये छंद उसने संवार कर [किन्हीं] सिराजुद्दीन से कहे हैं।[२७]

१६. चांदा-लोर परदेश प्रस्थान खंड (कड० २६६–२८०)

चांदा इस प्रसंग से अत्यधिक व्यथित हो कर घर गई, क्योंकि अब उसके मुख में ऐसा कालिख लग गया था जो धोया नहीं जा सकता था। मैनां हंसती हुई घर आई, क्योंकि उसने भरपेट चांदा का पानी उतारा था। खोलिन के पूछने पर उसने सारा प्रसंग सुनाया। तदनंतर मैनां ने अपनी मालिन को बुलाया और उसे चांदा के संबंध का उलाहना देने के लिए उसकी माता के पास भेजा। उसने जाकर चांदा-मैनां के बीच मंदिर में हुए कलह की चर्चा की। फूला महरी को अत्यधिक दुःख हुआ; वह पछताने लगी कि ससुराल से चांदा बुलाई ही क्यों गई थी? तदनंतर उसने लौट कर मैनां से बताया कि इस लोकोपवाद से महरी दुःखित हुई। उधर चांदा ने भी समझ लिया इस अपवाद के बाद उसका गोवर रहना ठीक नहीं था, इसलिए उसने बृहस्पति से लोरिक को कहलाया कि वह रातों-रात उसको लेकर निकल भागे, नहीं तो सबेरा होते ही वह विष खाकर प्राण त्याग देगी। बृहस्पति ने जब लोरिक को चाँदा का यह संदेश सुनाया, तो उसने वर्षाकाल में यात्रा की कठिनाइयां बताते हुए शरद, शिशिर, हेमंत अथवा बसंत ऋतु में चलने के लिए कहा। उसने जाकर चांदा से लोरिक की बात कही, जिस पर चांदा सहमत नहीं हुई और उसने बृहस्पति को पुनः लोर के पास भेजा। बृहस्पति ने पुनः जाकर चांदा को निकल भागने की व्यग्रता का निवेदन किया, तो लोरिक ने पंडित से दूसरे ही दिन का मुहूर्त लेकर प्रस्थान करने का वचन दिया।

---

[२७] प्रसंग की जिस प्रकार समाप्ति की गई है, उससे लगता है कि यह प्रसंग पूरे एक खंड का विषय था।

सबेरा होने पर लोरिक ने पंडित से मुहूर्त लिया। रात होने पर लोरिक पुनः बरहे की सहायता से धवलगृह पर चढ़ गया, चांदा पहले से तैयार बैठी थी। वह लोरिक के पैरों पर गिरी और लोरिक ने उसे उठा कर मत्थे से लगाया। तदनंतर अपनी [नवजीवन-] यात्रा पर वे दोनों निकल पड़े।

१७. कुंवरू-भेंट खंड (कड० २८१–२८५)

चांदा और लोरिक काले झगे पहन कर निकले तथा ओडन-खांडा-लोरिक ने और धनुष चांदा ने लिया। दस कोस जाने पर लोरिक का भाई कुंवरू मिला। कुंवरू ने कहा, "लोरिक तुमने यह अच्छा न किया कि तुम महर कन्या को लेकर भाग निकले। ·····तुम्हारी बूढ़ी माता खोइलिन और बाल्यावस्था की तुम्हारी विवाहिता मैनां चिल्ला-चिल्लाकर तुम्हारे विरह में मर जाएंगी।" चांदा ने कहा, "मैं लोरिक को जीते-जी न छोड़ूँगी।·····वह मेरे और मैं उसके चित्त में बस रहे हैं, इस यात्रा में हम देशान्तर भी देख लेंगे।" इस पर कुंवरू ने कहा, "तुझे तो काला मुख करके फिरना चाहिए, ऐसा तेरा आचरण है।" लोरिक ने कुँवरू को गले लगाया और वह रोने लगा। फिर कुँवरू उसका गला छोड़कर उसके पैरों पड़ा। लोरिक ने कहा, "कार्तिक मास की ऋतु का उत्सव मनाकर हम लौट आएंगे। अब हम हरदी के मार्ग पर हैं, विदा दो। मां से कहना कि मैनां पीहर न जाने पाए और उसकी सेवा में रहे।"

१८. बावन-युद्ध खंड (कड० २८६२–९६)

संध्या होने पर वे गंगा के तट पर पहुंच कर एक वृक्ष के नीचे सो रहे। गंगा बढ़ रही थी और उसे पार करना था, इसलिए लोरिक-चांदा ने एक छलपूर्ण युक्ति का आश्रय लिया—वह छिप गया और चांदा बार-बार अपने-आप को दिखाने लगी कि उसे अकेली देखकर कोई नाव वाला आ जाता। एक नाव वाला जब अपनी नाव के पास आया, तो उसे चांदा ने कंगन दिखाया। उसे देखते ही नाव वाला वहां आ गया। दोनों नाव पर चढ़ गए, उन्होंने नाव वाले को वहीं छोड़ दिया और करिये (डांडे) को लोरिक ने अपने हाथों में कर लिया : इस प्रकार दोनों गंगा को पार कर गए। तब तक पीछा करता हुआ बावन नदी-तट पर आ पहुँचा, केवट ने उसे बताया कि वे उसकी नाव लेकर नदी पार कर गए थे। बावन लोरिक को नदी के उस पार देखकर नदी में कूद पड़ा। किन्तु उस ने जब तक नदी पार की, चांदा-लोरिक चार कोस आगे जा चुके थे। बावन ने दौड़कर दस कोस पर उन्हें पकड़ा, जहाँ पर एक ऊंचा वृक्ष था। बावन ने बाण चलाया, जिससे लोरिक का

ओडन फूट गया, लहावट फूट गया। लोरिक एक आम के वृक्ष की आड़ में जाकर खड़ा हो गया। चांदा ने कहा, "हे बावन, जब विवाह के अनंतर मैं तेरे पास बरस-दिन तक रही और तूने प्रेम पूर्वक बात न की, तरस-तरस कर मैं मर गई और तेरी शैया न मिली, जैसी आई थी, वैसी ही मायके गई, तब जो मेरे भाग्य में लिखा था वह मुझको मिला। तू अब अपने घर को वापस जा; समझ ले कि यह वह कूंकू लोर है जिसने राब रूपचंद और बाँठा को मारा है।" किन्तु बावन ने लोरिक के साथ भाग निकलने के लिए उसे लज्जित करते हुए एक बाण और छोड़ा जो वृक्ष को फाड़ता हुआ निकल गया। चांदा ने उसे पास के देवकुल (मंदिर) का आश्रय लेने की राय दी। बावन के पास तीन ही बाण थे, जिनमें से दो को वह पहले छोड़ चुका था, शेष एक को भी उसने छोड़ दिया, किन्तु वह बाण उड़ (चूक) गया। चांदा ने कहा, "शुक्र (काना बावन) अब अस्तमित हुआ और सूर्य (लोरिक) प्रकाशित हुआ!" बावन ने तब धनुष फेंक दिया और दोनों को शाप दिया, "मेरी विवाहिता होने पर भी इसे तुम ले जा रहे हो और यह तुम्हारे साथ जा रही है, इसलिए तुम, ऐ लोरिक, यमपुर में राज्य करोगे और चांदा को सांप डंसेगा।" बावन ने एक बार उन्हें यह भुलावा देकर लौटाना चाहा कि वे दोनों स्त्री-पुरुष होकर रहेंगे और वह इसमें कोई दखल न देगा, किन्तु चांदा ने कहा, "जिसकी विवाहिता ली जाए, उसकी प्रतीति न करनी चाहिए," और, यह कहते हुए वे आगे बढ़े।

१९. कलिंग-युद्ध खंड (कड० २९७–३०७)

जब वे कलिंग के राज्य में पहुंचे, उन्हें बोदई नाम का एक दानी (कर उगाहने वाला) मिला, जो कर के रूप में चांदा को मांगने लगा। लोरिक अर्थ-कर देने लगा, किन्तु उसने उसे स्वीकार न किया। यह देखकर लोरिक और चांदा दोनों युद्ध के लिए तैयार हो गए। उन्होंने विपक्ष के सभी जनों को मार गिराया। जब बोदई ने लोरिक को पहचान कर उससे जीवदान मांगा, उसने उसका मुख काला कर और उसके बालों में बेल बांधकर उसे राजा के पास भेज दिया। बोदई राजा के पास पहुंचा और उसने सारी घटना सुनाई। राजा उसको आगे करके चला। सयानों ने इस पर राजा से कहा, "कोई परदेशी यदि आता है, तो उससे इस प्रकार की छेड़-छाड़ न करनी चाहिए, क्योंकि यदि हार हो जाती है तो मुख काला होता है; अतः ऐसे वीर क्षत्रिय को बहुतेरे पसाव के साथ बुलाकर रखिए और फिर वह जहां जाए, जाने दीजिए।" सयानों की बात मान कर राजा ने लोरिक-चांदा को आदरपूर्वक

बुलाया और उस दानी को जो उन्होंने दंडित किया था, उसका समर्थन किया। लोरिक ने राजा के न्यायी होने की सराहना करते हुए उन्हें हरदीं भेजने का अनुरोध किया। राजा ने उन्हें रुकने के लिए कहा, किन्तु वे न रुके।

२०. प्रथम सर्पदश खंड (कड० ३०८–३१२)

राजा ने चांदा और लोरिक को सुखासन और घोड़े पर बिठाकर विदा किया। वे वहां से आकर [कलिंग देश में ही] एक ब्राह्मण के घर पर ठहरे। वे फूलों की शैया बिछा कर सोए तो फूलों की वासना से एक सर्प आ गया और उसने चांदा को डंस लिया। चांदा ने जब पुकार की तो लोरिक ने उठकर उस सर्प को मार डाला। किन्तु चांदा तब तक निर्जीव हो चुकी थी। चांदा को जीवित करने का कोई उपाय न चल सका, तो लोरिक ने चिता तैयार की और लाकर उस पर आग रखी कि वह चांदा के मृत शरीर को लेकर जल जाए, किन्तु तब तक एक गुणी आ गया जिसने चांदा को जीवित कर दिया। लोरिक ने चांदा के समस्त आभरण उसे दे दिए। तदनंतर चांदा को सुखासन पर चढ़ा कर वह आगे बढ़ा।

२१. द्वितीय सर्पदंश (बिसहर) खंड (कड० ३१३–३२९)

[यही एकमात्र खंड है जिसका नाम मिला है, और यह नाम मिला है मैं० के फ़ारसी शीर्षक में जो स्वीकृत कडवक ३२९ के साथ उसमें मिलता है।]

खा-पीकर जब दंपति सो गए, तो रात्रि के अन्तिम प्रहर में एक विषधर आ निकला और उसने चांदा को डस लिया। वह लोरिक को जगा कर इतना ही बता पाई थी और अचेत हो गई। विलाप करते हुए लोरिक ने कहा, "जिस चांदा के लिए अनेक बार इस जीवन का तिरस्कार कर चुका हूं, जिसके लिए युद्ध में प्रवृत्त होकर मैंने बांठ को मारा और रूपचंद को सीधा किया, ऋण होकर खाट पर मैं पड़ा, पुनः योगी बनकर भिक्षा मांगी, और एक वर्ष तक देवालय में जागता रहा, बरहा फेंक कर धवलगृह पर गया और अपने सिर की बाज़ी लगाकर उसको लाया, 'चोर-चोर' की पुकार होने पर पकड़े जाने और प्राण-दण्ड पाने से बचा, अब उसी स्त्री को मैं बनखंड में पहुंच कर गंवा रहा हूं।" एक पूरा दिन और एक पूरी रात गए, तो लोरिक ने चिता बनाई और चांदा को सिर पर ले जाकर उस चिता पर रक्खा, किन्तु उसके आंसुओं से चिता की आग बुझ-बुझ जाती थी, तब-तक एक गुणी आ पहुंचा। सर्वस्व समर्पित करने का वचन देकर लोरिक ने उससे चांदा को जिलाने का निवेदन किया। उस गुणी ने मंत्र का उच्चारण कर जैसे ही पानी छिड़का, चांदा चेत में आ गई। इस पर लोरिक ने चांदा के और अपने आभरण एवं अन्य

बहुमूल्य पदार्थ उसे दे दिए। दाऊद कवि ने कहा है "इस खंड में उसने चांदा की कथा इसलिए गाई है कि कथा-काव्य करके वह लोक को सुनाए। नथन मलिक ने यह दुःख का प्रसंग उठाया था, उन्हीं को इसलिए ये छंद (इस खंड के छंद) सुनाए हैं।"[२८]

२२. हरदीं-पाटन-निवास खंड (कड० ३३०–३३८)

चौदह कोस आगे बढ़ने पर वे हरदीं पाटन पहुंचे। वहां का राजा छेतम आखेट के लिए निकल रहा था, तभी लोरिक ने उसे जुहार की और नगर देखने को आगे बढ़ गया। राजा ने एक नाई उसे ले जाकर आवास देने के लिए नियुक्त कर दिया। वह उन्हें एक राजभवन में ले गया और उससे आवश्यक जानकारी प्राप्त की। आखेट के अनंतर जब राजा लौटा, नाई ने उसे उनके बारे में जो कुछ ज्ञात हुआ था, बताया। उसने कहा कि वह गोवर का योद्धा लोरिक था और जिसके कारण राव रूपचंद को इसने मारा (मार भगाया) था, वह चांदा नारी [उसके साथ की स्त्री] थी। दूसरे दिन लोरिक राजा को भेंट देने आया, तो छेतम ने सम्मानार्थ निकट बुला कर उसे बाना (पहनावा) दिया और प्रसन्न होकर एक घोड़ा दिया। इस घोड़े को पाकर लोरिक हर्षित हुआ। इस प्रकार एक वर्ष तथा कतिपय मास तक दोनों ने वहां सुख-पूर्वक निवास किया।

२३. मैनां-सन्देश-निवेदन खंड (कड० ३३९–३६२)

इधर मैनां निरंतर रोती और लोरिक की बाट जोहती रहती। वह उन पथिकों का मार्ग देखती रहती जिनसे उसे लोरिक का कुशल-समाचार मिल सकता। एक दिन उसने एक टांडे (सार्थ) के आने की बात सुनी। खोलिन ने उसके नायक को बुलाकर पूछा कि वह कहां का निवासी था और कहां जा रहा था। उसने बताया कि वह गोवर का था, सुरजन उसका नाम था और वह हरदीं पाटन जा रहा था। पाटन का नाम सुनते ही खोलिन रो पड़ी और मैनां नायक के पैरों पर गिर पड़ी। मैनां ने बताया कि उसका स्वामी एक वर्ष से [एक अन्य स्त्री] चांदा के साथ हरदीं पाटन में रह रहा था; उसी के पास वह सन्देश भेजना चाहती थी। उसने उससे सावन मास से लेकर आषाढ़ तक के बरस-दिन के कष्टों का वर्णन किया।

तदनंतर उसने चांदा के लिए उसे सन्देश दिया। उसने कहा, "उसके

---

[२८] **प्रसंग की इस प्रकार की समाप्ति से यह स्पष्ट लगता है कि प्रसंग एक स्वतंत्र खंड का विषय था।**

जिस स्वामी के लेकर उसने छः ऋतुओं तक शैया सूनी कर रखी थी, उसे वह दक्षिणा के रूप में ही दे देती। वह भी स्त्री थी, इसलिए उसे तो समझना चाहिए था कि पति के न होने पर स्त्री का हृदय रात्रि में किस प्रकार फटता है।" खोलिन ने भी उससे अपने हृदय की पीड़ा कही, उसने कहा, "मेरा जीवन तो [संध्या की] पीली धूप है····· वह अस्त हो जाएगी तो तुम आकर भी क्या करोगे ?"

२४. संदेश-प्राप्ति तथा स्वदेश-आगमन खंड (कड० ३६३–३८०)

चार मास तक चलने पर टांडा हरदीं पहुंचा। सुरजन भेंट की वस्तुएँ लेकर उस राज-भवन की पौरी पर पहुंचा जिसमें लोरिक निवास कर रहा था। लोरिक पौरी पर आया, तो ब्राह्मण ने उसे अनेक अशीर्वाद दिए, और उसके ग्रह-नक्षत्रों की गणना करके उनके फल कहते हुए संकेतों में यह भी कहा कि वह पापकुंड (पर नारी का संसर्ग) छोड़ कर शुद्ध गंगा नहाएगा (विवाहिता के साथ रहेगा)। सुरजन ने पुनः कहा, "तेरा भाई कुंवरू, तेरी माता, तेरे कुटुंबी और तेरी पत्नी मैना—सभी तेरी बाट देख रहे हैं; मैनां तो तेरी विरह-ज्वाला में सबसे अधिक जल गई है। तुझे उससे डरना चाहिए जो अपना विवाहित पुरुष छोड़ कर दूसरे पुरुष को लिए बैठी है।" फिर उसने बताया कि किस प्रकार उसको बुला कर उन्होंने सन्देश दिए, और मैनां किस प्रकार उसके साथ आने का हठ कर रही थी, जब खोलिन ने उसे समझा कर शान्त किया। मैनां का यह संताप सुनकर लोरिक रोने लगा, और दूसरे ही दिन उसके साथ स्वदेश के लिए प्रस्थान करने को तैयार हो गया। किन्तु चांदा ने जब यह सुना, उसकी दशा ऐसी हो गई जैसी चांद की ग्रहण होने पर होती है। लोरिक ने ब्राह्मण को लेकर भोजन किया, किन्तु चांदा उपासी रह गई।

सवेरा होने पर लोरिक ने पाटन-राज से विदा ली। पाटन-राज ने सम्मान पूर्वक उसे दो सौ पदातिकों के साथ विदा किया। चांदा ने गोवर जाने से उसे बहुत रोका, और हरदीं वापस जाने का उससे बहुतेरा आग्रह किया, किन्तु लोरिक ने उसकी एक न सुनी।

२५. मैनां-सतीत्व-परीक्षा खंड (कड० ३८१–३९३)

पचास कोस चलकर गोवर के निकट देवहां में लोरिक-चांदा उतरे। लोरिक ने सबेरा होने पर एक माली को बुलाया और उसे कुछ फूल देकर गोवर में भेजा। वह गोवर में घर-घर फूल देता फिरा, किन्तु जब वह मैनां के पास पहुंचा, तो उसने यह कह कर उसे स्वीकार नहीं किया कि उसका पति

परदेश गया हुआ था। फिर भी, हठपूर्वक माली ने उसके गले में एक पुष्प-हार डाल दिया। उसमें मैनां को कुछ वैसी वासना मिली जैसी उसे केवल लोरिक के लाए हुए फूलों में मिलती थी, इसलिए रोते हुए वह उससे पूछने लगी कि उसका परदेशी प्रिय कहां पर आया हुआ था। उसने उत्तर दिया कि वह स्वयं परदेशी था, किन्तु उसके साथ अन्य लोग भी ठहरे हुए थे जो विभिन्न स्थानों से आए हुए थे, संभव था कि उनसे उसके परदेशी प्रिय का कोई समाचार मिल जाता, यदि वह सबेरे ही दूध बेचती हुई वहां आ जाती। लोरिक ने इस प्रकार माली द्वारा उसे वहां आने के लिए प्रेरित कर ग्वालिनों से दूध-दही लेने का प्रबंध किया। जो महरियां आईं, उनके सिर में सिंदूर डलवा कर और उन से दूध-दही लेकर उन सभी को जाने दिया, और जब मैनां आई, चांदा से उसके मांग में सिंदूर डालने और उसके दूध-दही का दस गुना दाम देने के लिए कहा। किन्तु मैनां सिंदूर कराने के लिए तैयार नहीं हुई, क्योंकि, उसने कहा, उसका पति हरदीं गया हुआ था, और उसके न होने के कारण उसे इस प्रकार की साध नहीं होती थी। फिर भी लोरिक मैनां को जाने नहीं दे रहा था, और छेड़-छाड़ कर उसका मर्म ले रहा था; मैनां ने उसे इसके लिए झिड़क दिया और वह चल पड़ी, तो चांदा उसको लेकर पलंग पर अपने साथ बिठाने लगी, किन्तु मैनां दूसरे दिन पुनः आने का वचन देकर चली गई। दूसरे दिन वह पुनः आई, जैसे और महरियां आईं। चांदा ने भीतर बुला कर पुनः उसकी उदासी के संबंध की बात चलाई, तो मैनां ने कहा कि उसके दुःख-संताप का कारण एक चांदा थी जो बरस-दिन पूर्व उसके पति को भगा ले गई थी, और वह यदि मिल जाती तो उसका मुख काला कर वह उसे सर्वत्र घुमाती। चांदा ने इसके उत्तर में जब अपनी बड़ाई बताई, तब दोनों एक-दूसरे को पहचान गईं और आपस-में झगड़ने लगीं। लोरिक ने दोनों को शांत किया। चेरियों से उसने मैनां का शृंगार करने को कहा और उसे रात के लिए वहीं रोक लिया। नहला कर मैनां का शृंगार किया गया और रात्रि में लोरिक ने उसके पास जाकर उसकी मनुहार की।

२६. गृह-आगमन खंड (कड० ३९४–३९७)

यह अपयश की बात गोवर भर में फैल गई कि मैनां पिछली रात को किसी परदेशी के साथ रह गई थी। खोलिन अजई के घर यह समाचार लेकर गई, तो अजई निकल कर वहां गया। लोरिक पर उसने खांडे का प्रहार किया, किन्तु उसके आघात से ज्यों ही लोरिक का टाटर टूटा, अजई पहचान गया कि यह लोरिक था। फिर उसने लोरिक को अंकों में भरा और

घर चलने को कहा। लोरिक घोड़े पर चड़ा हुआ घर आया, माता के चरणों में पड़ा और उससे क्षमा-याचना की। माता ने कहा ऐसा कर उसे वह दुःखित न करता। तदनंतर दोनों बहुओं को खोलिन घर के भीतर ले गई। गीत गाए गए और बधावे हुए। लोरिक ने माता से अपनी अनुपस्थिति के बीच के समाचार पूछे, तो उसने बताया कि उसके जाने पर बावन आया था, जो मैनां और बैनां को निकाले ले जा रहा था, अजई ने उन्हें छुड़ाया। तब महर ने मांकर को कहला भेजा कि लोरिक के न होने पर यह अच्छा अवसर था कि वह उसकी गायों को हांक ले जाता, [शोक में] दुर्बल कुंवरू उसके समक्ष क्या था ? यह सुनकर मांकर एक कटक लेकर आ गया। अकेला कुंवरू क्या कर सकता था ? वह लड़ते-लड़ते मारा गया। जब महर ने यह समाचार एक नाई से पाया, उसको उसने वस्त्र पहनाए। एक दुःख तो उसे उस (लोरिक) का ही था, दूसरा जब कुंवरू के मारे जाने का लगा, वह दिन भर रोती और रात भर जागती रहती थी।

२७. अंत खंड (कड० ३९८–)

रचना का यह अंश अनुपलब्ध है। रचना के लोक-गाथा-रूप के अनुसार ऊपर लिखा विवरण पाने पर लोरिक मांकर के घर पर जाता है और उसे युद्ध के लिए ललकारता है, दोनों में युद्ध होता है, जिसमें मांकर मारा जाता है। तदनंतर मांकर के बेटे देवसिया से उसका युद्ध होता है, जिसमें एक क्षेत्रीय रूप के अनुसार लोरिक मारा जाता है, और एक अन्य क्षेत्रीय रूप के अनुसार वह विजय प्राप्त करता है, किन्तु उसके अनंतर किसी अन्य कारण से वह काशी जाकर करसी सीझ जाता है (अपने चारों ओर उपले जला कर जल मरता है)। दाऊद ने अपनी रचना में लोक-गाथा से स्थान-स्थान पर भिन्नता भी रखी है, इसलिए यदि इस अंत के विषय में अंतर हो, तो आश्चर्य न होगा। हरदी में सुरजन ने उससे भविष्य-कथन करते हुए कहा है—"राजा चंद्रु पाट बइसारा; मंति बिरसपति सुरिजु उभारा।"[२९] यह कथन किस रूप में चरितार्थ हुआ होगा, यह स्पष्ट नहीं है, किन्तु इसका संबंध कथा के इस अंश से ही है, यह स्पष्ट ज्ञात होता है। इसी प्रसंग में चांदा की षष्ठी के अवसर पर का ज्योतिषियों का यह कथन भी विचारणीय है कि जीवन के ऊर्ध्व में ही वह मृत्यु को प्राप्त होगी : उरधइ सौं जाइहि जम बारा।[३०] फलतः ज्ञात होता है कि गोवर का राज्य प्राप्त कर जीवन के

[२९] चांदायन ३६९। [३०] वही, ३३।

ऊर्ध्व में ही किसी कारण-वश, असंभव नहीं कि लोरिक के मृत होने पर चांदा, और कदाचित् मैनां ने भी, देह-त्याग किया।

रचना की कथा का आधार क्या है, यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। कथा का मूल आधार निस्संदेह आभीरों की वह जातीय लोक-गाथा है जो 'लोरिकी' और 'चनैनी' के नामों से अधिकांश हिन्दी-क्षेत्र में प्रचलित रही है। इसके अनेक क्षेत्रीय रूपों का पता चला है और 'मध्ययुगीन प्रेमाख्यान' के योग्य लेखक डॉ० श्याममनोहर पाण्डेय अमरीकन इंस्टीट्यूट आव इंडियन स्टडीज़ की आर्थिक सहायता से एक विशाल परियोजना विगत दो वर्षों से चला रहे हैं, जिसमें इन समस्त विभिन्न रूपों को वे गायकों के कण्ठ से टेप-बद्ध कर रहे हैं, बाद में वे इन विभिन्न रूपों का विश्लेषण कर इनके प्राचीनतम रूप की स्थापना करेंगे और दाऊद के 'चांदायन' का उनसे क्या संबंध है, इसे स्थिर करेंगे। उसके कुछ क्षेत्रीय रूपों के संक्षेप विभिन्न विद्वानों और लेखकों ने दिए हैं। नीचे खंड क्रम से हम देखेंगे कि 'चांदायन' की कथा के कौन से तत्व इन लोक-गाथा रूपों से विशिष्ट हैं।

खंड १ : यह कवि का अपना है। इसमें स्तुतियों के अनंतर उसने अपनी रचना के संबंध में उसका रचना-काल आदि दिया है, किन्तु उसके आधार का उल्लेख नहीं किया है। कथा का कोई भाग इस खंड में नहीं आता है।

खंड २ : यह भी कवि का अपना है। कथा के लोक-गाथा रूपों में गोवर-वर्णन जैसी कोई वस्तु नहीं मिलती है, दो-चार पंक्तियों में गोवर की प्रशंसा भले ही मिल जाए।

खंड ३ : पद्मिनी के रूप में चंद्र का अवतार 'चांदायन' के कवि की अपनी कल्पना है। बारह मासों की होने पर ही उसके सौन्दर्य का ख्याति देश-विदेश में होने लगती है, यह भी उसकी अपनी ही कल्पना है। बावन सिउहर से उसका विवाह लोक-गाथा की वस्तु है।

खंड ४ : बावन के द्वारा चांदा की उपेक्षा लोक-गाथा की ही वस्तु है किन्तु उसका अपने भाई को बुलाकर पीहर जाना 'चांदायन' का अपना है। लोक-गाथा रूपों में वह अकेली चली जाती है। पीहर जाने पर उसका जो वर्णन शीत, ग्रीष्म तथा वर्षा के संदर्भ में किया गया है, वह भी 'चांदायन' का अपना है।

खंड ५ : बाजुर-मूर्च्छा का सारा प्रसंग 'चांदायन' का अपना है और निस्संदेह कवित्वपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है—विशेष रूप से प्रहेलिका की सहायता से उसका चांदा के अपरूप का कथन। बाजुर नाम अवश्य किसी

लोक-गाथा रूप से लिया हुआ हो सकता है। मैथिली गाथा-रूप में 'बाजिल' उस संदेश वाहक कौवे का नाम बताया गया है जो मैनां का संदेश लेकर उस समय लोरिक के पास गया था जब वह हरदीं में था। संभवतः वही नाम 'चांदायन' में उस भिक्षुक का रख लिया गया है, जिसकी मूर्च्छा का इस खंड में उल्लेख होता है।

खंड ६ : रूपचंद के सम्मुख बाजुर द्वारा चांदा के रूप-शृंगार-वर्णन की कल्पना 'चांदायन' की अपनी वस्तु है। लोक-गाथा रूपों में न रूपचंद मिलता है और न बाजुर द्वारा चांदा के रूप-शृंगार-वर्णन का प्रसंग आता है।

खंड ७ : प्रायः समस्त लोक-गाथा रूपों में बांठा चांदा से छेड़-छाड़ करता दिखाया जाता है, जब वह पीहर लौटती हुई चांदा को मार्ग में मिलता है। 'चांदायन' में राव रूपचंद बांठा को लेकर चांदा के लिए उसी प्रकार आक्रमण करता है जिस प्रकार अलाउद्दीन ने चित्तौर की पद्मिनी के लिए किया था। उसकी सेना के द्वारा मार्ग में किया हुआ तहस-नहस भी उसी प्रकार वर्णित हुआ है जैसा कि सुल्तानों के हिंदू राज्यों पर किए हुए आक्रमणों के समय देखा जाता था। मठों-देवालओं-अमराइयों को ढहाना और उनमें आग लगाना रूपचंद के संबंध में उतने तथ्यपूर्ण नहीं लगते हैं जितने वे अलाउद्दीन तथा दिल्ली के अन्य कुछ सुल्तानों के संबंध में थे, किंतु इस प्रकार के वर्णन से हिन्दुओं और उनकी धार्मिक संस्थाओं के साथ कवि की सहज सहानुभूति के संकेत अवश्य मिलते हैं।

खंड ८ : गोवर-युद्ध का समस्त विस्तार 'चांदायन' की अपनी वस्तु है, जिस प्रकार बाजुर-मूर्च्छा और गोवर-अभियान के प्रसंग उसके अपने हैं। माता, मैनां तथा अजई से विदा लेने के अनंतर लोरिक का युद्ध में सम्मिलित होना भी उसका अपना है। बांठा का लोरिक के द्वारा मारा जाना कथा के लोक-गाथा रूपों में भी मिलता है, किन्तु 'चांदायन' में वह चांदा से छेड़-छाड़ करने के कारण नहीं मारा जाता है, वह तो रूपचंद का महता होने के कारण युद्ध में सम्मिलित होता है और लोरिक द्वारा मारा जाता है।

खंड ९-१० : कथा के लोक-गाथा रूपों में चांद-लोर में छेड़-छाड़ के प्रसंग प्रारंभ से ही मिलते हैं : दोनों एक ही गांव में रहते हैं और झूले, होली तथा जल-विहार आदि के गांव के कार्यक्रमों में बराबर मिलते रहते हैं। उनमें बावन की उपेक्षा के अनंतर चांदा अधिकाधिक लोरिक की ओर खिचती जाती है और अन्त में उसकी हो जाती है। प्रथम दर्शन और पुनर्दर्शन के प्रसंग 'चांदायन' में उसके सर्वथा अपने हैं और तत्कालीन सामंतीय परिवेशों में

समाज-वर्जित अनुराग का जो विकास इन प्रसंगों के द्वारा प्रस्तुत किया गया है, वह अवश्य ही सराहनीय है।

खंड ११ : धवलगृह-आरोहण का प्रसंग उसी प्रकार लोक-गाथा रूपों में भी मिलता है जिस प्रकार वह 'चांदायन' में है, किन्तु चित्रित चौखंडी और चांदा के विलास के प्रसाधनों का वर्णन 'चांदायन' का अपना है।

खंड १२-१३ : चांदा-लोर मिलन के पूर्व एक विस्तृत संवाद रचना में आता है, जिससे उसके प्रेम-दर्शन का अच्छा परिचय मिलता है। निस्संदेह रचना का सबसे उपयोगी अंश यही है, जो कि उसको कथा के लोक-गाथा रूपों से अलग करता है। इस खंड में मरण-मार्ग से जिस अमरत्व की प्राप्ति कराई गई है वह दाऊद के प्रेम-दर्शन का एक उज्ज्वल उपादान है, जो कि आगे जायसी और मंझन की कृतियों में भी अविकल रूप में प्रयुक्त होता है।

खंड १४-१५ : लोरिक द्वारा मैनां का समाधान और चांदा-मैनां विवाद के प्रसंग भी 'चांदायन' के अपने हैं और ये दोनों ही अपने स्वाभाविक परिवेशों में दिखाए गए हैं—विशेष रूप से दूसरा।

खंड १६ : मालिन द्वारा चांदा की मां फूला के पास मैनां द्वारा उलाहना भेजे जाने का प्रसंग भी 'चांदायन' का अपना है। चांदा-लोरिक के हरदीं-प्रस्थान की बात दोनों में समान रूप से मिलती है।

खंड १७ : कुंवरू से भेंट का प्रसंग भी दोनों में समान रूप से मिलता है।

खंड १८-१९ : बावन और कलिंग युद्ध के प्रसंग भी थोड़े से अंतर के साथ दोनों में मिलते हैं।

खंड २०-२१ : सर्पदंशों के प्रसंग भी दोनों में मिलते हैं, यह अवश्य है कि द्वितीय सर्पदंश (बिसहर) खंड में लोरिक के आत्म-निवेदन-पूर्ण आत्मोत्सर्ग का जो भव्य रूप प्रस्तुत किया गया है, वह कृति का अपना है।

खंड २२ : हरदीं-निवास का प्रसंग दोनों में मिलता है, किन्तु अन्तर के साथ। लोक-गाथा रूपों में इसका विकास लोरिक को एक चपल और उद्धत नायक के रूप में चित्रित करते हुए किया गया है, जो एक ओर एक कलालिन से प्रेम करने लगता है, और दूसरी ओर इतने उद्दंडतापूर्ण कार्य करता है कि हरदीं के राजा को उससे पीछा छुड़ाने का उपाय करना पड़ता है। 'चांदायन' में लोरिक का हरदीं-निवास वहां के राजा के साथ सौहार्दपूर्ण है। वह किसी अन्य स्त्री के हाथों में बिकता भी नहीं है और मनचाही चांदा को पाकर भली भांति संतुष्ट और प्रसन्न है। हरदीं के राजा का नाम भी दोनों में भिन्न-भिन्न है।

खंड २३ : बनजारे के द्वारा संदेश-निवेदन मैनां ने लोकगाथा-रूपों में भी किया है, जिस प्रकार उसने 'चांदायन' में किया है, किन्तु बारहमासे के रूप में उसका कष्ट-निवेदन और चांदा को दिया हुआ उसका संदेश रचना के अपने हैं, और निस्संदेह कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किए गए हैं। नायक के नाम भी दोनों में भिन्न-भिन्न हैं।

खंड २४ : संदेश-प्राप्ति और स्वदेश-आगमन के प्रसंग दोनों में मिलते हैं, किन्तु ज्योतिष-विचार पूर्वक सुरजन का लोरिक के जीवन का भावी क्रम-निरूपण 'चांदायन' की अपनी वस्तु है। हरदीं-नरेश से सौहार्दपूर्ण विदा प्राप्त करने का प्रसंग भी रचना का अपना है।

खंड २५ : मैनां-सतीत्व-परीक्षा दोनों में प्रायः समान है, विस्तारों में कुछ अंतर है। माली को फूल लेकर गोवर भेजने और मैनां को आमंत्रित करने का प्रसंग रचना का अपना है। चांदा-मैनां का कलह भी इसी प्रकार उसका अपना है।

खंड २६ : गृह-आगमन का प्रसंग भी दोनों में प्रायः समान है।

रचना की कथा का शेष अंश अप्राप्य है, और उसके निश्चित रूप का अनुमान करना संभव नहीं है।

इस सबके अतिरिक्त एक बात और विचारणीय है, लोक-गाथा के अनेकानेक कथा-विस्तार रचना में नहीं लिए गए हैं, और उनके छोड़ देने में कवि की सुरुचि का ही प्रमाण मिलता है।

फलतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रचना के लिए लोक-गाथा की स्थूल रूपरेखा को भले ही ग्रहण किया गया है, उसके विस्तारों को भिन्न ढंग से भरा गया है। यह कुल नवीनता दाऊद का निजी कृतित्व है, या कथा से संबंधित किसी पूर्ववर्ती कृति का भी इसमें योग है, यह कहना कठिन है। यद्यपि यह असंभव नहीं है, किन्तु जब तक इसके स्पष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं होते हैं, यही मानना होगा कि यह दाऊद का मौलिक कृतित्व है।

५. रचना का सन्देश

रचना का सन्देश एक विवाद का विषय बना हुआ है। दाऊद ने जिस प्रेम का प्रतिपादन अपनी रचना में किया है, वह किस प्रकार का है, यह एक विचारणीय प्रश्न है। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए चांदा और लोरिक के पूरे प्रेम-प्रसंग को देखना पड़ेगा।

रचना में प्रेम नायिका (चांदा) में पहले-पहल अंकुरित होता दिखाया गया है। गोवर-युद्ध के विजेता लोरिक को सम्मानित करने के लिए नायिका

का पिता महर उसकी शोभा-यात्रा का आयोजन करता है, जिसमें लोरिक एक हाथी पर बिठा कर राजकीय सम्मान के साथ नगर में घुमाया जाता है। नगर भर उसे देखने को उमड़ पड़ता है—उस लोरिक को देखने के लिए जिसने अपने खांडे की बदौलत गोवर की रक्षा की है, और उसकी भुजाओं की पूजा करता है। यह ध्यान देने योग्य है कि इस युद्ध में वह किसी कामना के साथ नहीं प्रवृत्त हुआ था। जहाँ रूपचंद ने चांदा के लिए गोवर का अभिमान किया था, लोरिक चांदा की प्राप्ति को लक्ष्य बना कर युद्ध में नहीं उतरा था, वह योद्धा केवल इसलिए युद्ध में उतरा था कि उसे महर ने एक आक्रान्ता से, जो उसकी कन्या चाहता था, लोहा लेने के लिए आमंत्रित किया था। महर के भेजे हुए भाट ने उससे ज्योंही कहा था—

लोर महर तुम्हं बेगि हंकारे। कुंवरू धवरू बांठइं मारे।[३१]
जा रबि गोवरु लागि गोहारी। लइ(लेइ) अब चांद होइ अंधियारी।[३२]

वह आक्रान्ताओं को मार भगाने के लिए उठ खड़ा हुआ था—

उठ लोरु सुनि नाखा परलै महर भया अवसान।
आज बांठु रन मारउं देखउं राइ परान॥[३३]

अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि उसने चांदा के संबंध के एक अस्फुट स्नेह के कारण अपने प्राणों की बाज़ी लगाई थी, जैसा उसने एक स्थान पर कहा भी है—

तुम्हरिय माख जो दीति न काऊ। मारिउं बांठ खिदेरिउं राऊ।[३४]

यद्यपि यह कथन केवल प्रेमिका का स्नेह अर्जित करने के लिए भी किया गया हो सकता है, क्योंकि युद्ध-यात्रा के प्रकरण में इस प्रकार का कोई भाव लोरिक में नहीं अंकित किया गया है।

इस युद्ध-यात्रा के प्रसंग में महर की सेवा में भी जब वह उपस्थित होता है, वह किसी रूप में यह मांग नहीं करता है कि विजयी होने पर उसे चांदा दे दी जाए यद्यपि उस युद्ध में कदाचित् ऐसे भी योद्धा थे जो इसी लक्ष्य से महर की ओर से लड़ने को प्रस्तुत हुए थे; रणपति नाम का एक कुमार इसी प्रकार लगता है—

रनपति महर दीन्ह अगुसारी। चाह बियाहि आनइं कुंवारी।[३५]

किन्तु लोरिक ऐसों में नहीं था।

---

[३१] **चांदायन, १०५।** [३२] **वही।** [३३] **वही।** [३४] **वही, २०२।**
[३५] **वही, १२६।**

कथा के लोक-गाथा रूपों में से किन्हीं-किन्हीं में यह मिलता है कि चांदा और लोरिक में फाग-झूले आदि के उत्सवों में स्वच्छंद प्रेम के संकेत होते रहते थे, किन्तु दाऊद ने अपने दोनों पात्रों को इससे बचाया है—और निश्चय ही जान-बूझ कर बचाया है। दाऊद की कथा में तो उनका परस्पर का प्रथम दर्शन ही गोवर-युद्ध के अनंतर विजयोत्सव और ज्यौनार के अवसरों पर होता है। इसलिए लोरिक की युद्ध-यात्रा निष्काम है और मात्र धर्म अथवा स्नेह से प्रेरित है।

चांदा के मन में तो रचना में इस वीर के प्रति किसी प्रकार का स्नेह-भाव पहले से नहीं दिखाया गया है। जब वह उसकी विजय-संबंधी शोभा-यात्रा में उसका दर्शन करने के लिए धवलगृह के ऊपरी खंड पर जाती है, उसमें उस वीर के दर्शनों की एक श्रद्धापूर्ण उत्सुकता भर है, जिसने उसको और उसके देश-ग्राम को उबारने के लिए प्राणों की बाज़ी लगाई है—

सो कस आहि जेइं गोवरु उबारा। कवनु वीर जेहिं कटकु संघारा।
कवनु सिंघु जेहिं गैंबरु हनां। धनि सो जननि अइस जेइं जनां।
पूछेउं (पूंछउं) धाइ बचनु सुनि मोरा। एहिं दर कवनु सो कूंकूं लोरा।[३६]
कवनु रूपु कहं मंदिर आछइ आखउं बिरस्पति तोहि।
साधि मरित हउं बीरनि लोरु दिखावहि मोहि॥[३७]

लोरिक-दर्शन की उसकी यह साध अवश्य ही बहुत उत्कट है—जो 'मरति हउं' से प्रकट है, किन्तु यह 'साध' अपने त्राणकर्त्ता के दर्शनों द्वारा अपने श्रद्धापूर्ण कुतूहल को संतुष्ट करने के मात्र लिए है, इससे आगे और किसी बात के लिए नहीं है।

किंतु जब बृहस्पति उसे लोरिक का दर्शन कराती है, वह उसे देखकर विमोहित हो जाती है और बेक़रार (बेचैन) भी; उस पर पानी छिड़का जाता है, तब वह चेत में आती है। फिर भी, पून्यो के उस चांद की सोलह कलाएं सूर्य (लोरिक) की सहस्र कलाओं की छाया पड़ने पर तिरोहित हो जाती हैं और वह अमावस्या की रात्रि हो जाती है—

चांदहि लोरिक निरखि निहारा। देखि बिमोही गई बेकरारा।
सुरिज सनेह चांद कुंबिलानी। आइ बिरसपति छिरका पानी।
धरु आंगनु सुख सेज न भावइ। चांद उमाही सुरिजु बोलवाइ।
पूनिउं चंद्र जइस मुख अहा। गई सो जोति गहन होइ रहा।

[३६] वही, १३६। [३७] वही, १३६।

सहस करां सूरिज कइ रही चांद चित छाइ।
सोरह करां चांद कइ भई अमावसि जाइ॥[३८]

ऐसा लगता है कि जैसे उसकी कृतज्ञतापूर्ण श्रद्धा ने उस नीव का रूप ग्रहण कर लिया, जिस पर प्रेम का नव प्रासाद खड़ा हुआ, अथवा वह बीज का वह पौदा बन गई जिस पर प्रेम के अधिक सुरस फल की क़लम लगी। यदि उस अपूर्व पौरुषपूर्ण सौन्दर्य के दर्शन के लिए पहले से उसने मानसिक तैयारी की होती, तो कदाचित् उसे झेल जाती, किन्तु अकस्मात् ही उसका संपूर्ण अस्तित्व उस अप्रतिम पुरुष-सौन्दर्य से अभिभूत हो जाता है, और दूसरे दिन बृहस्पति जब उससे पूछती है—

कहु सो बात जिहिं तूं असि भई। काहि लागि भरि आंकुर गई।[३९]

वह बृहस्पति के पैरों में पड़कर पुनः लोरिक का दर्शन कराने को कहती है—

चांद बिरस्पति कै पां परी। काल्हि सुरिजु देखिउं एक घरी।
कइ ओहि मोरे घरें बुलावहि। कइ मोहिं लइ ओकें डंड लावहि।[४०]

लोरिक तो और भी बिना किसी तैयारी के—अकस्मात्—चांदा का दर्शन करता है, और इसीलिए उसे देखते ही उसके जीव का अपहरण हो जाता है—

अमिरितु जेवन तेहि माहुर भएउ। जीउ काढि हरि चांदइं लिएऊ।
मुक्ख न जोति कया अति रूखी। चांद सनेह सुरिजु गा सूखी।[४१]

उसे लोगों को उसके घर तक डांडी पर ले जाना पड़ता है। वह खाट पर पड़ जाता है और तभी उठ पाता है जब चांद की धाय बृहस्पति चांद से मिलाने का उसे आश्वासन देती है। उस समय बृहस्पति से भी उसने इस जीवापहरण की बात कही है जो चांदा के प्रथम दर्शन का परिणाम था—

जेहिं दिन हउं जेंवनार बोलावा। महर मंदिर काहू दिखरावा।
सो जिउ लइ गइ कही न जाई। बिनु जिउ भएउ परेउं घहराई।[४२]

नायिका-नायक में प्रेम के प्रादुर्भाव का यह रूप रचना की विशेषता है, कथा के लोक-गाथा रूपों में यह कहीं नहीं मिलता है।

इस प्रेम का विकास जिस प्रकार रचना में होता है, वह भी हमें उस में ही मिलता है, लोक-गाथा रूपों में नहीं। प्रेम-रुग्ण लोरिक को देख कर बृहस्पति ने

[३८] वही, १३८। [३९] वही, १४०। [४०] वही, १४०। [४१] वही, १५३। [४२] वही, १५८।

अनुमान कर लिया कि यदि उसके इस रोग की औषधि न हुई, तो यह जीवित न रहेगा—

बिरस्पति देख लोरिक कइ कया। मरन सनेह उठी मन भया।
पाइ छाडि लोरिक पिइ पानी। ओषद करउं पीर तोरि जानी।[४३]

यह 'मरण' ही लोरिक की प्रेम-यात्रा का सबसे बड़ा संबल है; यही हिन्दी सूफ़ी प्रेम-कथाओं में प्रेमी को अमरत्व प्रदान करता है; इस 'मरण' के आधार पर ही प्रेमी काल से भी नहीं डरता है, क्योंकि उसे विश्वास होता है कि मरे हुए को काल भी नहीं मारता है। इसी कारण इस 'मरण' को जायसी ने 'उपकार' की संज्ञा से अभिहित किया है। जो दशा लोरिक की यहां पर सौन्दर्य के साक्षात्-दर्शन से हुई है, वही रत्नसेन की शुक-द्वारा पद्मावती के सौन्दर्य-वर्णन को सुन कर होती है, और चेत में आने के बाद अवन (असुन्दर) जगत् को देख कर रत्नसेन रोने लगता है—

जौ भा चेत उठा बैरागा। बाउर जनहुं सोइ अस जागा।
अवन जगत बालक जस रोवा। उठा रोइ हा ग्यान सो खोवा।[४४]

और कहता है—

हौं तो अहा अमरपुर जहां। इहां मरनपुर आएउं कहां।
केइं उपकार मरन कर कीन्हा। सकति जगाइ जीउ हरि लीन्हा।[४५]

इसी कारण वह मृत्यु-जयी प्रेमी काल से भी भय नहीं करता है—

गजपति यह मन सकती सीऊ। पै जेहि प्रेम कहां तेहि जीऊ।
जौं पहिलें सिर दइ पगु धरई। मुए केर मींचुहि का करइ।[४६]
कत तेहि मींचु जो मरि कै जिया। भा अम्मर मिलि कै मधु पिया।[४७]

इन प्रेम-कथाओं में प्रेमी बार-बार मरता है। रचना में यह लोरिक का दूसरा मरण है, उसका पहला मरण तो रणक्षेत्र में हो चुका है। उसने चांदा की रक्षा के लिए ही तो उस मरण का वरण किया था, जिसको न उसका विवाहित पति बावन कर सका था और न महर के वे भृत्य कर सके थे जिन्होंने सब दिन उससे लाभ उठाए थे—प्राणों का संकट आने पर वे सभी भाग निकले थे।

लोरिक का तीसरा मरण उस समय होता है जिस समय वह बरस-दिन तक तपस्वी के वेष में आसन मारे और चांदा का नाम जपते हुए प्रतीक्षा करने के अनन्तर चांदा को नमस्कार करती देखता है—

[४३] वही, १६१। [४४] पद्मावत १६१। [४५] वही, १६१। [४६] वही, १४२। [४७] वही, ३०५।

चांद सीसु भंगिवंतहि नावा। भा अचेतु मन चेतु गंवावा।
मुनिवर मन देखन गुन गएऊ। पीत बरन मुख भेंभर भएऊ।
नैन झुरहिं अति कया सुखानी। धनि धानुक चखि हना बिनानी।
नैन दिस्टि चांदा मुख लाएसि। रहा पाइ न सो देखइ पाएसि।
भउंह फिराइ चांद गुन तानी। नैन बान मुनि हनां सयानी।
काटि दीन्ह जस बकर देवारीं रगत कीन्ह घर बार।
देखि गई घर धरती मुनिवर देउ दुवार॥[४८]

चांदा के चले जाने पर लोरिक निर्जीव-सा पड़ा-पड़ा सोचने लगता है—

माता पिता बंधु नहि भाई। संगु न साथी मीतु न धाई।
एहि बन खंड कोइ पास न आवइ। को रे 'मरत' मुखि नीर चुवावइ।
को रे उठाइ बइसार संभारी। एहि कंथा गुन देइ हंकारी।[४९]

और इसके कुछ समय बाद उसका जीव लौटता है—

दई (दइय) पेट जीउ (जिउ) बहुरि संचारा। बांधेसि सीसु झारि कइ बारा।[५०]

इसीलिए योद्धा और गोवर-युद्ध के विजेता लोरिक के विरह से पीड़ित चांदा ने जब बृहस्पति से कोई रस की वार्त्ता करने के लिए कहा है, उसने इस घटना की ओर संकेत करते हुए कहा है कि वह रस की बातें तो तब करती जब कि रस की घड़ी आने पर वह विरसता न करती : रस के कुंड में डूबता-मरता हुआ उसका जो प्रेमी उस मंदिर में पड़ा था, पहले वह उसको तो उस कुंड में से पकड़ कर बाहर लाती, तब रस की ऐसी बातें करती—

रस कइ बात चितहिं जउ धरसी। रस कइ घरिय बिरस जनि करसी।
रस के कुंड परा मरहि मुनिवरु गन (गहन ?) गहीरु।
रस क बूड धरि बाहइं चांदा लावहि तीर॥[५१]

—उस प्रेमी को जो उसके रस की आशा-पिपासा में उसके विद्यमान होते हुए मर रहा है—

तोरें रस घर आहि पियासा। निससत रहइ लेइ मरि सासा।[५२]

लोरिक का चौथा 'मरण' चांदा के धवलगृह-आरोहण में घटित होता है और यह 'मरण' अकेला नहीं पूरी एक मरण-शृंखला है। जब और कोई युक्ति दोनों के मिलन की नहीं रह जाती है, बृहस्पति धवलगृह-आरोहण की युक्ति की ओर संकेत करती हुई लोरिक से कहती है कि उसका अवलंबन

[४८] चांदायन १६८। [४९] चांदायन, १७०। [५०] वही, १७०। [५१] वही, १७३। [५२] वही, १७५।

करने पर वह या तो स्वर्ग (धवलगृह) पर चढ़कर वह चांदा के रूप का भोग करता और या तो उसे फांसी ही मिलती—दोनों ही अवस्थाओं में उसे स्वर्ग का निवास-लाभ प्राप्त होता—

उटउ बीर जउं उटवइ पारसि । सरग पंथ जउ चढ़त संभारसि ।
कइ कारन हनिवत बरु बांधसि । कइ कर लाइ पुंख सर सांधसि ।
कइ रे फांस बरु मेलसु जउ रे सरग चढ़ि जासु ।
कइ रे चांद रबि भूंजसु दुहुं तस सरग निबा(वा)सु ।।[५३]

दाऊद ने उसके स्वर्ग (धवलगृह) के आरोहण का वर्णन भी इसी दृष्टि से किया है—

चला बीरु बरहा कर लावा । जिय के परे दूसर न बोलावा ।[५४]
बीर परान बरन गुन काहा । बेडिनि बांस चढ़ति जनु आहा ।[५५]

सोती चांदा को जगाते समय भी उसके प्राण निकल जाते हैं, प्राणों की बाज़ी लगाकर वह चांदा को जगाता है—

'गा परान' बर पौरुख बीरहि बकति न आउ ।
जीउ उडान मनि संका केहि बिधि सोवत जगाउ ।।[५६]

चांदा जब जाग कर 'चोर-चोर' पुकारते हुए उसके केश पकड़ती है, वह उससे कहता है—

तोहि लागि जउ 'मरऊं' नेह न छाडउं काउ ।
पिरीति तुम्हारि लागि मोरे हिरदइं जइ 'जीउ' जाइ तउ जाउ ।।[५७]

और चांदा इसका उत्तर देती हुई कहती है—

'जिउ देइ चाह' आइ सो बेरा । जियतहि न कोउ चोर मुंह हेरा ।
'मींचु' टारि तूं आतेसि कइसेइं मेंटि न जाइ ।
पाउ धरहि तोहि बिस्तर 'जाइहि जीउ गंवाइ' ।।[५८]

प्रत्युत्तर देते हुए लोरिक मरण-साधना द्वारा अमरत्व की सिद्धि के अपने उसी विश्वास का प्रतिपादन करता है जिसकी ओर ऊपर संकेत किया जा चुका है, और यह प्रतिपादन कितना स्पष्ट और दृढ़ है, इसको सुगमता से देखा जा सकता है—

जउ लहि जीउ घट महंहि होई । तउ लहि सरगि न आवइ कोई ।
परथमि मानुस 'जीउ गंवावइ' । तउ पाछें चढि सरगेहिं आवइ ।

[५३] वही, १८५ । [५४] वही, १८८ । [५५] वही, १९१ । [५६] वही, १९६ । [५७] वही, १९८ । [५८] वही, १९९ ।

'मरि कइ' चांद सरगि हउं आवा । जउ जिउ होइ डराइ डरावा ।
हउं तउ 'मरिउं' जउहि तूं देखी । तोहि देखि धनि 'मुइउं बिसेखी' ।
'मुएं' जो मारइ सो कस आहा । चांद 'मुएं' कर मारब काहा ।
देखि रूप 'जिउ दीन्हा' तउं आइउ तोहि पास ।
रहे नैन जेहिं देखउं रहइ जियहु लइ सांस ।।[५९]

प्रेमी के इस मरण-निवेदन से जो प्रभाव प्रेम-पात्र पड़ना चाहिए था, वही चांदा पर पड़ता है और जो वह उसको चोर की भांति पकड़े हुए थी, छोड़ देती है—

कहत बचन मोहिं असभा का गहि करियहिं तोहि ।
महर रूखि लइ टांगइ सो हत्या फुनि मोहि ।।[६०]

इस मरण-शृंखला की सबसे दृढ़ कड़ी हमें लोरिक-चांदा-मिलन के अनंतर उस समय मिलती है जब चांदा चौखंडी में उसे अपनी शैया के नीचे छिपा देती है, और दो राज-भृत्य उसे खोज कर पकड़ ले जाने के लिए आते हैं। कवि ने इस 'मरण' का वर्णन भी बड़ी पूर्णता के साथ किया है—

चांद सुरिजु घर धरा छपाई । राहु गरह दुइ गरहइं आई ।
लोर चउखंडी दई संभारा । कउहु देवस अंथवइ करतारा ।
अइस कुलखनां मूंड कटाउब । पापधि चोर परि रूखि टंगाउब ।
'नियरि मींचु होइ ढूकी रगत न रहा सुखान' ।
'बिनु जिय' लोरिक सेजि तराहीं आपनि कया न जान ।।[६१]

लोरिक ने इस बार अपनी मृत्यु अपने नेत्रों से स्वयं देखी है, जो आकर और उसे पहचान कर लौट गई है, और यह भी उसे तब भान हुआ है जब चांदा ने उसे अमृत छिड़क कर जिलाया है—

अंथवा सुरुज चांद दिखरावा । अंबिरित छिरका लोरु 'जियावा' ।
आपनि 'मींचु' नैन मइं देखी । 'मींचु' आइ फिरि गई बिसेखी ।
हउं जइ जिया चांद कुंबिलानी । अत अवसान भया तेहिं बानीं ।
एहिं परि रइनि 'जउ दई जियावइ । 'नाखउं मींचु' नहि नियरें आवइ ।।[६२]

किन्तु इस बार के मरण में लोरिक को यह आश्वासन भी मिल जाता है कि [मरण में भी] अब वह अकेला न रहेगा, चांदा उसकी संगिनी होगी—

[५९] वही, २०० । [६०] वही, २०१ । [६१] वही, २१३ । [६२] वही, २२४ ।

सुनहु लोर एक बिनती अब तुम्हं काह मंखाहु ।
हउं तुम्हरइ जइसि ब्याही तूं मोर ब्याहू नाहु ।।[६३]

और इस प्रकार उसकी मरण-साधना उसे अमरत्व की सिद्धि प्रदान करती है ।

दाऊद ने इस मरण-साधना का निर्वाह चांदा के सर्पदंश के प्रसंगों में भी किया है । दोनों बार लोरिक चिता रच कर चांदा के निर्जीव शरीर के साथ उस पर जल मरने को उद्यत होता है, यद्यपि दोनों बार गारुडियों द्वारा चांदा के जीवित किए जाने पर उसका यह 'मरण' टल जाता है । प्रथम सर्प-दंश का प्रसंग तो संक्षिप्त है, उसमें 'मरण' की तत्परता मात्र ही आ पाई है, किन्तु दूसरे सर्पदंश प्रसंग में वह चिता की रचना कर चांदा के निर्जीव शरीर के साथ उस पर बैठ भी जाता है, और तब गारुड़ी आकर चांदा को जिलाता है ।

मरण से अर्जित होने वाले दाऊद के इस 'प्रेम' का एक अभिन्न सहचर 'सत्य' है । जब लोरिक चांदा से अपना प्रेम-निवेदन करता है, वह जानना चाहती है कि उसमें 'सत्य' भी है अथवा नहीं, क्योंकि यही वह बल है जिससे 'प्रेम' की नाव पार लगती है—

पूछउं लोरिक कहु 'सति' मोही । केइं असती बुधि दीन्हीं तोही ।
'सत' हि तिरइ सायर महिं नावा । बिनु 'सत' बूडइ थाह न पावा ।
जेहि 'सतु' होइ सो लागइ तीरा । 'सत' कर हीन बूड़ मंझि नीरा ।
'सत' गुन खैंचि तीर लइ लावा । 'सत' छाड़ें गुन तोरि बहावा ।
'सत' संभार तउ पावइ थाहा । बिनु 'सत' थाह होइ अवगाहा ।
'सतु' साथी 'सतु' सांभल 'सत' इ नाउ कंडहार ।
करि 'सत' कत तूं आवसि बर सिधि देइ करतार ।।[६४]

'प्रेम' और 'सत्य' के इस अटूट संबंध को जायसी ने भी इसी प्रकार महत्ता दी है—

कै अस्तुति जौं बहुत मनावा । सबद अकूट मंडप महं आवा ।
मानुस प्रेम भएउ बैकुंठी । नाहिं त काह छार एक मूंठी ।
प्रेमहि माहं बिरह औ रसा । मैन के घर मधु अंब्रित बसा ।
'निसत' धाइ जौं मरै तो काहा । 'सत' जौं करै बैसेइ होइ लाहा ।
एक बार जौं मनु कै सेवा । सेवहि भल परसन हो देवा ।[६५]
हां अब कुसल एक पै मांगौं । प्रेम पंथ 'सत' बांधि न खांगौं ।

[६३] वही, २२४ । [६४] वही, २०५ । [६५] पद्मावत, १६६ ।

जौं 'सत' हिए तौ नैनन्ह दिया । समुंद न डरै पैठि मरजिया ।
तहं लगि हेरौं समुंद ढंढोरी । जहं लगि रतन पदारथ जोरी ।
सपत पतार खोजि जस काढ़े बेद गरंथ ।
सात सरग चढ़ि धावौं पदुमावति के पंथ ।।[६६]
सायर तिरै हिएं 'सत' पूरा । जौं जियं 'सत' कायर पुनि सूरा ।
तेहिं 'सत' बोहित पूरि चलाए । जेहिं 'सत्त' पवन पंख जनु लाए ।
'सत' साथी सत कर सहिवांरू । 'सत्त' खेइ लै लावै पारू ।
'सतै' ताक सब आगू पाछू । जहं जहं मगर मच्छ औ काछू ।
उठै लहरि नहिं जाइ संभारा । चढै सरग औ परै पतारा ।
डोलहिं बोहित लहरै खाहीं । खिन तर खिनहिं उपराहीं ।
राजैं सो 'सतु' हिरदै बांधा । जिह 'सत' टेकि करै गिरि कांधा ।[६७]

दाऊद की निम्नलिखित पंक्ति—

'सतु' साथी 'सतु' सांभल 'सत' इ नाउ कंडहार' ।[६८]

जायसी की निम्नलिखित पंक्ति से तुलनीय है—

'सत' साथी 'सत' कर 'सहिवांरू' । 'सत्त' खेइ लै लावै पारू' ।[६९]

'सत्य' सम्बन्धी उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए लोरिक कहता है कि जिस दिन से उसने उसे देखा है, उसका रंग (अनुराग) ही उसका जीवन हो गया है, और वही रंग (अनुराग) उसके नेत्रों से नदी बन कर बहा है; यदि 'सत्य' न हुआ होता, तो उसके गहरे जल में वह डूब चुका होता, 'सत्य' ने ही उसे इस गहरी सरिता में डूबने से बचाया और पार लगाया है ।

इस 'सत्य' का प्रमाण देते हुए लोरिक जब रंग (अनुराग) की बातें कहने लगता है, किस प्रकार इस रंग (अनुराग) ने उसके समस्त जीवन को आपूरित किया है, वह उसके विवरण निम्नलिखित प्रकार से देता है—

जेहिं दिन चांद गइउं जेवनारा । देखि बिमोहिउं रूप तुम्हारा ।
तुम्हरी जोति जु भा उजियारा । परिउ पतंग होइ मइं न संभारा ।
सो रंग रहा न चित हुत जाई । चितहु मांझ रंग कुरिया छाई ।
रंग जेंवन रंग भोजन करउं । रंग पुनि जीवन निरंग फुनि मरउं ।
तेहि रंग नैन नीर नइ बहा । होइ बर रंग करारन ढहा ।

[६६] वही, १४९ । [६७] वही, १५० । [६८] चांदायन, २०५ । [६९] पद्मावत, १५० ।

रंग जउ देह मन भारी बिनु रंग उठइ न पाउ।
जीउ चाहि रंगि दूलह सुनु चांदा 'सत' भाउ ॥[७०]

'प्रेम' के अभिन्न सहचर के रूप में 'सत्य' का यह कथन भी दाऊद के काव्य की विशेषता है, कथा के किसी लोकगाथा-रूप में दोनों के इस अभिन्न संबंध का निर्वाह ही नहीं संकेत भी नहीं हुआ है।

इसी प्रकार दाऊद प्रेम के एक अन्य आत्मीय 'दुःख' का भी परिचय हमें कराते हैं। उपर्युक्त प्रसंग में लोरिक के कथन पर जब चांदा कहती है कि रंग (अनुराग) के कोई लक्षण उसे उसमें दीखे नहीं, यह रंग (अनुराग) तो 'दुःख' से पक्का होता है; जिसे रंग (अनुराग) होता है वह इस प्रकार चल और चढ़ कर नहीं आता है, वह तो पड़ा (गिरा) हुआ आता है; रंग (अनुराग) में विद्ध को न अन्न रुचता है और न नींद आती है, मोटा और स्थूल होते हुए लोरिक यह कैसे कह रहा था कि उसे रंग (अनुराग) लगा हुआ था ?

रंग कइ बात कहउं सुनु लोरा। कइसे रात मोहि मन तोरा।
जाति अहीरु रंग आहि न तोही। रंग बिनु निरंग न राता होई।
कहु 'दुख' जो तइं मोहि निति सहा। 'बिनु दुख यह रंग कइसें रहा'।
जउ न सहिय सिर खांडइ घाऊ। रंग रती एक होइ न काऊ।
अगिनि झार बिनु रंग न होई। जेहि रंग होइ अवटि मर सोई।
अन न रूच रंग बेधा जाइ नींदि निसि जाग।
मोंट थूल तूं लोरिक कहु कइसें रंग लाग ॥[७१]

तो उत्तर में लोरिक कहता है—

पानु भएउ चांदा तोहि जोगू। सिर देइ खेलेउं चित धरि भोगू।
गात किहेउं अस जइसि सुपारी। खांडि पीसि दोई कीतेउ नारी।
अवन स काढि कीन्ह दुइ आधा। अइस चांद मइं आपुहि साधा।
बिरह दगध हउं चूनां कीन्हां। जरत नीरु तेहि ऊपर दीन्हां।
अनु छोडेउं बिरहइं कइ झारा। पानीं कें हउं रहिउं अधारा।
कहिउं निरति सब आपनि अब जउ पूछहि बात।
अधर धरत गई पियरई तेहिं रंग तोरें रात ॥[७२]

जायसी की प्रेम-कथा 'पद्मावत' में भी रत्नसेन और पद्मावती में प्रेम

[७०] चांदायन, २०६। [७१] वही, २०७। [७२] वही, २०८।

के इस पक्ष को लेकर जो संवाद होता है, वह यहाँ पर उधृत करने की अपेक्षा रखता है। जब रत्नसेन कहता है—

रंग तुम्हारे रातेउं चढेउं गंगन होइ सूर।[७३]

और जब पद्मावती उसके 'रंग' पर शंका व्यक्त करती है—

जोगि भिखारि करसि बहु बाता। कहेसि रंग देखौं नहिं राता।
कापर रंगें रंग नहिं होई। हिएं औटि उपनै रंग सोई।
चांद के रंग सुरूज जौं राता। देखिय जगत सांझ परमाता।
दगधि बिरह निति होइ अंगारू। ओहि की आंच धिकै संसारू।
जौ मंजीठि औटै औ पचा। सो रंग जरम न डोलै रंचा।
जरै बिरह जेउं दीपक बाती। भीतर जरै उपर होइ राती।
जर परास कोइला के भेसू। तब फूलै राता होइ टेसू।
पान सुपारी खैर दहुं मेरै करै चकचून।
तब लगि रंग न राचै जब लगि होइ न चून ॥[७४]

रत्नसेन भी कुछ-कुछ उसी प्रकार की शब्दावली में उत्तर देता है जिसमें लोरिक ने दिया है—

धनिआ का सुरंग का चूना। जेहि तन नेह दगध तेहि दूना।
हौं तुम्ह नेहुं पियर भा पानू। पेंड़ी हुत सुनिरास बखानू।
सुनि तुम्हार संसार बड़ौना। जोग लीन्ह तन कीन्ह गडौना।
करभंज किंगरी लै बैरागी। नवती भएउं बिरह की आगी।
फेरि फेरि तन कीन्ह भुंजौना। औटि रकत रंग हिरदै औ (अब) ना।
सूखि सुपारी भा मन मारा। सिर सरौत जनु करवत सारा।
हाड़ चून भै बिरह जो डहा। सो पै जान दगध इमि सहा।
कै जानै सो बापुरा जेहि दुख अँस सरीर।
रकत पियासे जे हहिं का जानहिं पर पीर ॥[७५]

'प्रेम' की साधना में दुःख की यह स्वीकृति इन प्रेम-कथाओं की ही विशेषता है और इनके लोक-गाथा रूपों में नहीं मिलती है।

पुनः द्वितीय सर्पदंश प्रसंग में कवि ने प्रेम और दुःख का जो अभिन्न संबंध प्रतिपादित किया है, वह ध्यान देने योग्य है। वह लोरिक से कहलाता है—

जरम न छूट पिरम कर बांधा। पिरम खांड आहइ बिस सांधा।
जेहि एह चोट लागि सो जानी। कइ लोरिक कइ चांदा रानी।

[७३] पद्मावत, ३०७। [७४] वही, ३०८। [७५] वही, ३०९।

सुखी न जान दुख काहू केरा। सोई जान परइ चेहिं बेरा।
पिरम झार जेहि हिरदइं लागइ। नींदि न जान तपत निसि जागइ।
सात सरग जउ बरिसहिं आई। पिरम आगि कइसेहुं न बुझाई।
चिनगि एक जउ बाहेर मारइ एहिं पिरम कइ झार।
भसम होइ जरि धरती खिन एक सरग पतार।।[७६]

इसी प्रकार वह पुनः लोरिक से कहलाता है—

जेहि रे पिरम तेंहि बिरह संतावइ। बिरह जेहि तेहि पिरम सुहावइ।
पिरम सेल आहइ अनियारा। पैग न जोर पिरम कर मारा।
पिरम घाउ तेहि पूंछहु जाई। जेइं यह भाल करेजइं खाई।
पिरम घाउ ओषदि नहि मानइ। पिरम बान जेहि लाग सो जानइ।
भल फुनि होइ खांड कर मारा। जरम न पलुह पिरम कर जारा।
कवनिहु भांति न छूंटहि देखेउं परें पिरम कइ झेल।
पिरम खेल सोई पइ खेलहि जो सिर सेतिइं खेल।।[७७]

इन पंक्तियों को इसी आशय की 'पद्मावत' में बार-बार आई हुई जायसी की पंक्तियों से भली भांति मिलाया जा सकता है; दोनों में किसी प्रकार का अन्तर न मिलेगा।

इस प्रसंग में लोरिक ने एक बार अब तक के उन दुःखों को संक्षेप में विवृत भी किया है जिनको उसने अपनी प्रेम-साधना में अपनाया है—

चांद लागि मइं बहु दुख देखे। गिनति न आवइ एकउ लेखे।
मारेउं बांठ किएउ सुध राई। राखेउं महर केरि महराई।
परेउं खाट लइ पिरम जउ मारा। आइ बिरस्पति दीन्ह अधारा।
एक बरिस मढ़ देवर जागेउं। जोगी भेख भीख फुनि मांगेउं।
बरहा मेलि सरग चढ़ि धाएउं। सिर सेउं खेलि चांद लइ आएउं।
चोर चोर कइ मारत उबरेउं तेइं धनि लिएउं छडाइ।
अब तेइं धनि बन खंड गै छाडेउं केहि घरि आएउं चाइ।।[७८]

चांदा के साथ निकल भागने पर उसके हेतु लोरिक को जो अनेक युद्ध झेलने पड़े हैं, वे भी उसकी इस दुःख-सूची में आते हैं।

दाऊद की कथा का अंत किस प्रकार होता है, यह ज्ञात नहीं है। कथा के कतिपय लोकगाथा-रूपों के अनुसार काशी जा कर वह करसी सीझ जाता है, और इस प्रकार चांदा के कारण अंगीकृत किए गए दुःखी को झेलते हुए

७६ चांदायन, ३२३। ७७ वही, ३२४। ७८ वही, ३२१।

वह अपने प्राण-विसर्जन भी करता है। यदि दाऊद की कथा का अंत भी इसी प्रकार हुआ हो, तो ऐसी दुःख-प्लावित प्रेम-कथा हिन्दी साहित्य में अन्य नहीं दिखाई पड़ती है। यदि इसके निकट कोई पहुंचती है, तो वह है जायसी की 'पद्मावत'।

फलतः इस बात में रत्ती भर सन्देह नहीं रह जाता है कि दाऊद की यह रचना पूरी अवधी सूफ़ी प्रमाख्यानक काव्य परंपरा की यशस्विनी पूर्वज है और इस दृष्टि से अप्रतिम महत्त्व की है।

मानवीय और ईश्वरीय प्रेम के संबंधों को लेकर सूफ़ियों में दो प्रमुख विचार-धाराएं रही हैं: एक विचार-धारा के अनुसार पुरुष और स्त्री का प्रेम ईश्वरीय प्रेम का ही प्रतिरूप है और दोनों में किसी प्रकार का अंतर नहीं है; दूसरी विचार-धारा के अनुसार उक्त मानवीय प्रेम ईश्वरीय प्रेम की प्राप्ति के लिए एक पुल मात्र है, ईश्वरीय प्रेम सजातीय होते हुए भी मानवीय प्रेम से भिन्न स्तर की वस्तु है और ईश्वरीय प्रेम की अनुभूति प्राप्त होने पर मानवीय प्रेम त्याज्य हो जाता है।[७९] प्रश्न यह है कि दाऊद इनमें से किस विचार-धारा के हैं। दाऊद की तीन पंक्तियां इस प्रसंग में विचारणीय हैं, जो लोरिक के द्वारा चांदा के द्वितीय सर्पदंश के अवसर पर कहलाई गई हैं—

दइय गोसाईं सिरजनहारा। तोहि छाडि किसु करउं पुकारा।
जस कीन्हेउं तस पाएउं रहेउ चांद चित लाइ।
जो बाउर मनुसहिं चित बांधइ सो अइसइं पछताइ।।[८०]

इन पंक्तियों के आधार पर दाऊद की गणना कदाचित् दूसरी विचार-धारा के सूफ़ियों के साथ ही करनी पड़ेगी। ये पंक्तियां रचना की धर्म-सापेक्ष्यता भी निर्विवाद रूप से प्रमाणित कर देती हैं।

इस प्रेम के संबंध में स्वभावतः एक शंका उठती है जो प्रस्तुत रचना और 'पद्मावत' के पाठकों और आलोचकों की सचमुच एक बड़ी शंका है; वह यह है कि जो एक स्त्री—और रूपवती स्त्री—के होते हुए दूसरी की ओर दौड़ रहा है, वह रूप-रस-लोभी स्नेह का प्रपंच मात्र करता है, और उसकी आड़ में एक मुग्धा को छलना ही चाहता है। दाऊद ने तो इस शंका को नायिका के माध्यम से उपस्थित भी किया है, जो कि 'पद्मावत' के रचयिता ने नहीं किया है। चांद कहती है—

७९ डा० श्याम मनोहर पांडेय: 'मध्य युगी प्रेमाख्यान', पृ० १८-२४।
८० चांदायन, ३२७।

सुरग सेजि भरि 'फूल बिछावसि । कंवल कली तसि मैनां रावसि ।
असि धनि छाडि जउ अनतइं धावा । कइ सनेह तउ हीं छटकावा ।
भंवर फूल पर रहइ लोभाई । रसु लइ तापहिं बहुरि जाई ।
काहि लागि तूं कोड करावसि । मोहि कुल राका धूरि भरावसि ।
अरे लोर तूं कहं बउरावसि । तहं बउराउ जहां कछु पावसि ।

का अचेति हउं बाउरि कै तूं लोर बउरावसि ।
कइ सनेह मोहिं छरंगसि जित भावइ तित जावसि ।।[८१]

और इस शंका का उत्तर लोरिक निम्न प्रकार से देता है :

जेहिं दिन चांद दइय हउं गढ़ा । तेहि दिन हुंते तोर रंग चढ़ा ।
बिसरा लोक कुटुंब घर बारू । बिसरा अरथु दरबु व्यवहारू ।
मुख तंबोलु सिर तेलु बिसारा । बिसरा परिमलु फूल कइ मारा ।
अन न रूच निसि नींदि बिसारी । बिसरी सेज सो कलि फुलवारी ।
बुधि बिसरी रंग भएउ सवाई । ताकहं निरंग कहइ बउराई ।

तहं तोरइ रंग बिरवा हिरदइं लागेउ आइ ।
कोंप सरग जरि धरती जिय बरु जाइ तउ जाइ ।।[८२]

इस उत्तर में कदाचित् इस तथ्य की कवि-द्वारा स्वीकृति है कि एक स्त्री के रहते हुए भी अन्य स्त्री से प्रेम किया जा सकता है, आवश्यक इतना ही है कि वह ऐसी आसक्ति हो जिसके लिए जीवन-दान का अनुष्ठान किया गया हो । इसीलिए चांदा को इस उत्तर से संतोष हो जाता है, और वह लोरिक से अपने प्रेम की 'सत्यता' का प्रतिपादन करने में लग जाती है :

जेहिं दिन लोरिक रन जीति आएहु । पइसत नगर धायं दिखराएहु ।
तेहिं दिन हुंत मइं अन न कराई । परी न नींदि सेज न सुहाई ।
पेट पइसि जिउ लीन्हा काढ़ी । बिनु जिउ नारि देख बरु ठाढ़ी ।
मइं तोहि लागि जेवनार कराई । छत्तीस कुरी पिता हंकराई ।
मकु इक तिल तुम्हं देखइ पावउं । देखि रूप मकु नैन सिराहउं ।

तेहिं दिन हुत हउं भूलिउं मोर जिउ तोहि कों चाह ।
चरचा मरमु तुम्हारा लोर दहुं करियहु काह ।।[८३]

कथा के लोक-गाथा रूपों में न यह शंका ही उठाई गई है और न इस प्रकार के किसी समाधान की आवश्यकता ही समझी गई है ।

---

८१ वही, २०६ । ८२ वही, २१० । ८३ वही, २११ ।

प्रस्तुत प्रसंग में केवल एक बात और विचारणीय रह जाती है, वह यह है—हिन्दी की किसी भी अन्य सूफ़ी प्रेम-कथा में प्रेम का आलंबन किसी अन्य की विवाहिता पत्नी नहीं है, जैसी वह इस कथा में है । चांदा के प्रसंग में ध्यातव्य यह है कि; (१) चांदा अपने विवाहित पति के पास बरस-दिन रह चुकी थी किन्तु उसने चांदा से कभी प्रेमालाप तक न किया था, (२) इस उपेक्षा के जीवन की अपेक्षा अपने पितृगृह जाकर निवास करने का जब उसने संकल्प किया, उसके विवाहित पति बावन ने उस समय भी अपने व्यवहार में किसी प्रकार का परिवर्तन न किया और उसकी माता ने उसे उसके पितृगृह जाने के लिए एक प्रकार से भड़काया ही; (३) उसके पितृ-गृह से चांदा को ले आने या वापस बुलाने की बावन और उसके माता-पिता ने कल्पना तक न की; (४) जब रूपचंद ने चांदा के लिए गोवर-युद्ध छेड़ा, बावन वन खंड मेंछिप रहा, चांदा की लाज बचाने आया तक नहीं । इन परिस्थितियों में वैवाहिक संबंध किसी भी जाति में समाप्त समझा जायगा । अहीरों में तो इससे कम आपत्तिजनक स्थितियों में भी जाति के द्वारा वैवाहिक संबंध का विच्छेद स्वीकार कर लिया जाता है, और उसे सामाजिक मान्यता दे दी जाती है; इसके बाद दोनों प्राणी इस बात के लिए स्वतंत्र हो जाते हैं कि वे अपना दाम्पत्य संबंध जाति के किसी भी अन्य सदस्य के साथ स्थापित कर लें । जहां तक लोरिक का प्रश्न है, निस्संदेह लोरिक की एक स्त्री पहले से थी, किंतु एक से अधिक विवाह करना पुरुषों के लिए मध्ययुग में मान्य था । इसलिए सामाजिक दृष्टि से भी लोरिक और चांदा का पारस्परिक प्रेम निषिद्ध नहीं है ।

इस प्रसंग में इतना और ध्यान देने योग्य है कि फ़ारसी की अनेक सूफ़ी मसनवियों में प्रेम का आलंबन अन्य की विवाहिता स्त्री है । प्रसिद्ध सूफ़ी कवि निज़ामी की 'खुसरो-शीरीं' की नायिका शीरीं खुसरो की विवाहिता है, और फ़रहाद नाम का शिल्पी उस पर अनुरक्त होता है । निज़ामी की 'लैला-मजनूं' की नायिका लैला भी, जिससे मजनूं प्रेम करता है, इब्नसलाम से ब्याही हुई है । नायिका शीरीं का प्रेमी फ़रहाद उसकी मृत्यु का ग़लत समाचार सुनकर प्राण दे डालता है और मजनूं लैला की मृत्यु के अनंतर उसकी क़ब्र पर प्राण देता है ।[८४]

---

८४ विशेष विवरण के लिए दे० डा० श्याम मनोहर पांडेय, 'मध्य युगीन प्रेमाख्यान', पृ० २६-२६ ।

फलतः दाऊद ने जिस प्रेम का निरूपण किया है उसमें सूफ़ी धर्म के तत्त्वों की विद्यमानता प्रकट है।

६. रचना की संपादन-सामग्री

आधारभूत संपादन-सामग्री का विवरण इस प्रकार है :

(१) का० : काशी के कलाभवन के प्रति : रचना की किसी चित्रित प्रति के छः स्फुट पत्र भारत कला भवन, काशी में हैं। इन समस्त पत्रों पर एक ओर कथा के चित्र हैं और दूसरी ओर रचना का पाठ है। ये पत्र लगातार नहीं हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि चित्रित पत्रों का महत्त्व समझकर उनको सुरक्षित रक्खा गया था, और शेष को नष्ट हो जाने दिया गया था। चित्रों की शैली, अनुमानतः सोलहवीं शती ईस्वी के मध्य की है। इसलिए प्रति संभवतः रचना के सौ-डेढ़ सौ वर्षों से अधिक बाद की न होगी। इसकी लिपि अरबी है। ये पत्र बहुत यत्न से सुरक्षित हैं। प्रतिलिपि भी सावधानी से की गई है। प्रस्तुत कार्य के लिए पाठ इसके एक फ़ोटोग्राफ़ से लिए गए हैं, जो क० मु० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ ने मँगाए थे इसलिए लेखक कलाभवन तथा विद्यापीठ का आभारी है।

(२) बी० : बीकानेर की प्रति : यह प्रति बनी पार्क, जयपुर के श्री रावत सारस्वत के पास थी, और इसका एक विस्तृत परिचय कुछ उद्धरणों के साथ उन्होंने राजस्थान साहित्य समिति, विसाऊ (राजस्थान) के मुखपत्र 'वरदा' (वर्ष २, अंक ३, पृ० २६-३३) में 'मौलाना दाऊद और उनका चंदायन' शीर्षक से सात वर्ष पूर्व प्रकाशित किया था। अब यह प्रति क० मु० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ में आ गई है। प्रति सं० १६७३ की लिखी हुई है और उसका लेखन-स्थान शेखावाटी (राजस्थान) का फ़तेहपुर है, यह बीकानेर के किन्हीं सज्जन के लिए लिखी गई थी। प्रति के आदि-अंत निम्नलिखित हैं—

आदि : ।।६०।। स्वस्ति श्री सारदायनमः ।। नुसखः चंदायन गुफ़्तार मौलाना दाऊद दलमइ ।।

अंतः ।। श्री अथ संवत्सरेस्मिन् श्री नृप विक्रम संवतु १६७३ वर्षे हिम रितौ महा।। मांगल्येमार्गसिर मासे शुक्ल पक्षे सप्तम्यां ७ तिथौ गुरु वासरे।। श्री जुगिनपुरी से श्री साहि सलेम अदल राज्ये श्री मत्यु (मत्सु ?) फत्यहपुर मध्ये श्री अलफ खान राज्येः ब्राह्मण गौड़ान्ये प्रधान महारसिया अमरू तत्पुत्र दुरगा लिषितं पठनार्थे कथा चांदायन पठनार्थे महीराज वोशवाल महाराजा

श्री राइस्यहः तस्यपुत्र श्री सूरं वास्तव्य बीकानेर मध्ये श्री सुभमस्तु मांगल ददातु ।।

प्रति का आकार ६½″×६″ है। प्रारंभ के दो पृष्ठ शेष प्रति के लिपिकर्त्ता से भिन्न व्यक्ति के हस्तलेख में हैं। प्रति १६२ पत्रों तक लिखित है, उसके बाद उसमें तेरह पृष्ठ सादे छोड़े हुए हैं। तदनंतर ऊपर दी हुई पुष्पिका आती है। लिखित पृष्ठों के अन्तर्गत ४३६ कडवक आते हैं। उस अनुपात से सादे छोड़े हुए पृष्ठों में लिखने के लिए अधिक से अधिक २६-३० कडवक और हो सकते थे। इस प्रकार रचना की पूरी कडवक-संख्या बी० पाठ के अनुसार ४६८-४६६ के लगभग रही होगी। इस हस्तलिखित प्रति के उपयोग के लिए प्रस्तुत लेखक विद्यापीठ का विशेष रूप से आभारी है।

(३) भो० : भोपाल की प्रति : प्रस्तुत प्रति अत्यधिक खंडित है। इसके कुल ६८ पत्र ही उपलब्ध हो सके हैं, जिनमें से चार पर साधन के 'मैनां सत' के कडवक हैं। शेष ६४ पत्र भी रचना के विभिन्न अंशों के हैं। यह पूरी प्रति चित्रित थी : पत्र के एक ओर रचना के कडवक तथा दूसरी ओर संबंधित चित्र थे। यह अत्यधिक खेद का विषय है कि प्रति के शेष पत्र लुप्त हो गए। प्रति अरबी लिपि में है। यह पहले भोपाल में एक सज्जन के पास थी, जिनसे इसे प्रिंस आव् वेल्स म्यूजियम, बंबई के निदेशक डॉ० मोती चन्द्र ने उक्त संग्रहालय के लिए प्राप्त किया। जिस समय प्रस्तुत लेखक 'लोर-कहा' का संपादन कर रहा था, उसी समय उसे भोपाल में इस प्रति के होने का पता लगा था, और पुरातत्व विभाग के डॉ० तैमूरी की कृपा से इसके दो पृष्ठों के फ़ोटोग्राफ़ भी उसे प्राप्त हो गए थे। प्रस्तुत लेखक के प्रयास से लखनऊ संग्रहालय के लिए उसे प्राप्त करने का प्रयत्न चल रहा था कि तब तक वह बंबई पहुँच गई। प्रस्तुत लेखक के अनुरोध पर डॉ० मोती चन्द्र जी ने प्रति के पत्रों के फ़ोटोग्राफ़ क० मुं० हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ को देना स्वीकार किया, और वे मँगा लिए गए। इन्हीं के आधार पर रचना का एक पाठ विद्यापीठ के तत्कालीन निदेशक डॉ० विश्वनाथप्रसाद ने 'चंदायन' नाम से संपादित कर अन्य प्राप्त प्रतियों के आधार पर लेखक द्वारा संकलित 'लोर-कहा' के साथ प्रकाशित किया था। यह प्रति भी अनुमानतः ईस्वी १६वीं शती के मध्य की है। फ़ोटोग्राफ़ प्रिंस ऑव वेल्स म्यूज़ियम से विद्यापीठ को प्राप्त हुए थे, और इस कार्य के लिए प्रस्तुत लेखक को विद्यापीठ से मिले, इसलिए प्रस्तुत लेखक उक्त म्यूज़ियम और विद्यापीठ का आभारी है।

(४) म० : मनेर शरीफ़ के खानकाह की प्रति : इस प्रति के प्रारंभ के १४३ पत्र तथा १७८ के बाद के पत्र नहीं हैं। बीच के भी कुछ पत्र नहीं हैं। कुछ पत्रों पर तो प्रतिलिपिकार के द्वारा दी हुई पत्र-संख्या है, और कुछ पर नहीं है। 'तर्क' भी समस्त पत्रों पर नहीं हैं। फिर भी प्रति सिली हुई है, इसलिए कुछ अस्त-व्यस्त हुए पत्रों को छोड़कर शेष अपने पूर्ववर्ती क्रमानुसार ही हैं। जिन पत्रों पर प्रतिलिपिकार की दी हुई पत्र-संख्याएं नहीं रह गई हैं, उन पर अन्य व्यक्तियों ने पत्र-संख्याएं लगा दी हैं, जो निर्भरता-योग्य नहीं मानी जा सकती हैं। इस बहुमूल्य प्रति को ढूंढ़ निकालने और प्रकाश में लाने का श्रेय पटना विश्वविद्यालय के इतिहास के अवकाश-प्राप्त प्रोफ़ेसर श्री एस० एच० अस्करी को है। यह प्रति भी अपनी लिखावट में आदि से प्राचीन लगती है और असंभव नहीं कि सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी ईस्वी की हो। इसकी लिपि फ़ारसी है। प्रतिलिपि इसमें भी सावधानी से की गई है। इस प्रति के फ़ोटोग्राफ़ प्रस्तुत लेखक को स्व० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल से प्राप्त हुए थे, अतः इस प्रति के पाठ के लिए वह मनेर शरीफ़ खानक़ाह के अधिकारियों तथा उनका आभारी है।

(५) मसा० : मसाचसेट्स (संयुक्त राज्य अमेरिका) के श्री फ्रांसिस होफ़र के संग्रह की प्रति : भो० तथा मै० की भांति प्रस्तुत प्रति भी चित्रित है ; पत्रों के एक ओर रचना के कडवक तथा दूसरे ओर तत्संबंधी चित्र दिए हुए हैं। किन्तु खेद का विषय है कि केवल दो पत्र इसके प्राप्त हैं, जिन पर रचना के दो ही कडवक मिल सके हैं। ये अरबी लिपि में हैं। मेरे एक प्रिय शिष्य और 'हिन्दी प्रेमाख्यान' के योग्य लेखक डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय उस समय (१९६४ ई० में) शिकागो में थे जिस समय इन पत्रों का पता लगा। उन्होंने बहुत यत्न करके अपने एक मित्र श्री गोपाल शरण से, जो उस समय हारवर्ड में थे, इन दोनों पत्रों का अक्स उतरवाया था। फलत : इन पत्रों के पाठ के लिए प्रस्तुत लेखक उनके स्वामी श्री होफ़र के साथ ही डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय और श्री गोपाल शरण का आभारी है।

(६) मै० : मैनचेस्टर के जॉन राइलैण्डस पुस्तकालय की प्रति : आदि से अंत तक चित्रित यह प्रति अरबी अक्षरों में लिखी हुई है, किन्तु यह प्रारंभ तथा अंत में त्रुटित है, और बीच-बीच में भी इसके कुछ पत्र निकले हुए तथा अस्त-व्यस्त हैं, जो कि संबंधित चित्रों और उनके सामने के पृष्ठों पर दिए हुए रचना के कडवकों में परस्पर वैषम्य से ज्ञात होता है। प्रति का अन्तिम प्राप्त कडवक वर्तमान पाठ का ३९७ है। यदि रचना की समाप्ति बी० में

छोड़े गए सादे पत्रों के अनुसार मानी जाए, तो यह समझना चाहिए कि रचना के अंत के लगभग १४ कडवक अब प्रति में नहीं रहे। प्रस्तुत कार्य के लिए उपलब्ध प्रतियों में बी० के बाद यही सबसे अधिक पूर्ण है। यह प्रति भी काफ़ी प्राचीन है, और कदाचित् १६वीं शती ईस्वी के मध्य की ठहरेगी।

इस प्रति को खोज निकालने का श्रेय पटना संग्रहालय के निदेशक डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त को है। इसका उल्लेख उन्हें तासी के हिंदुई और हिन्दुस्तानी के इतिहास में मिला था, जो १९वीं शती ईस्वी में लिखा गया था। तब से यह कई हाथों में होती हुई वर्तमान संग्रह में पहुँची है। हिन्दी जगत् को इस उपलब्धि के लिए डॉ० गुप्त का कृतज्ञ होना चाहिए। प्रस्तुत लेखक को इस प्रति का पाठ उसके एक माइक्रो-फ़िल्म से मिला, जो राजस्थान विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है, अतः इस प्रति के पाठ के लिए प्रस्तुत लेखक उक्त जॉन राइलैण्डस पुस्तकालय तथा उसके साथ ही राजस्थान विश्वविद्यालय के पुस्तकालय का आभारी है।

(७)-(८) शि० : शिमला संग्रहालय की प्रतियां : रचना की दो चित्रित प्रतियों के दस पत्र—नौ पत्र एक प्रति के हैं तथा शेष एक अन्य प्रति का है—शिमला के राजकीय संग्रहालय में है। इन पत्रों पर भी एक ओर कथा के चित्र हैं और दूसरी ओर रचना का पाठ है। ये पत्र भी लगातार नहीं हैं। इन पत्रों की भी कथा वही प्रतीत होती है जो कलाभवन के पत्रों की रही होगी। इन प्रतियों का लेखन-काल भी अनुमानतः सोलहवीं शताब्दी का मध्य है, इसलिए इन प्रतियों का भी महत्व कला भवन की प्रति के समान है। एक प्रति वाले नौ पत्र अरबी लिपि में हैं और दूसरी का शेष एक पत्र फ़ारसी लिपि में है। लेख दीर्घकाल तक अरक्षित रहने के कारण अनेक स्थलों पर अपाठ्य हो गया है। इन प्रतियों का पाठ भी इनके फ़ोटोग्राफ़ से लिया गया है जो क० मु० हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ के लिए कराए गए थे, अतः इन प्रतियों के पाठ के लिए लेखक शिमला संग्रहालय और विद्यापीठ का आभारी है।

रामपुर के रज़ा पुस्तकालय में जायसी के 'पद्मावत' की फ़ारसी अक्षरों में लिखी हुई एक बहुमूल्य प्रति है। उसके मुखपृष्ठ पर निम्नलिखित पंक्तियां दी हुई हैं :—

(१) कोइल जइसि फिरिउं सब रूखा। पिउ पिउ करत जीभ मोरि सूखा।
(२) बनखंड बिरिख रहा नहिं कोई। कौनि डारि जेहिं लागि न रोई।
(३) पीत कहे बहु आ मिले (?) उत्तिम जिय की लागि।

(४) सो जग जो मिलि मैं रही गही न चकमक आगि ।।
(५) एक बाट गई हरदी दूसरि गई महोब ।
(६) ऊभ हाथ कइ चांदा बिनवइ कवनि बाट [हम होब ?] ।।
(७) फाटहि तासु नारि को हिया । एक छाडि जेहि दूसर किया ।
(८) एक एक करत जिउ देऊं । जग दूसर को नांउं न लेऊं ।

उद्धृत पहली पंक्ति के ऊपर 'चंदायन' शीर्षक दिया हुआ है, और वह प्रस्तुत संस्करण के कडवक ५३ में देखी जा सकती है । दूसरी पंक्ति के लिए कोई शीर्षक नहीं दिया हुआ है, किन्तु वह मंझन की 'मधु-मालती' की ४०६.५ है (दे० प्रस्तुत लेखक द्वारा संपादित तथा मित्र प्रकाशन लि०, प्रयाग द्वारा प्रकाशित संस्करण) । (३)-(४) के ऊपर शीर्षक 'बिषम धूत (?)' दिया हुआ है । (५)-(६) के ऊपर कोई शीर्षक नहीं दिया हुआ है । उसमें चांदा-कथा का कोई प्रसंग आता है, यह उसका नाम आने से प्रकट है, किन्तु दाऊद की रचना के अब तक प्राप्त अंशों में ये पंक्तियां नहीं मिली हैं, इसलिए या तो ये उसके अंत के उस अंश की होंगी जो अब तक अप्राप्य है, और या तो ये किसी अन्य कवि की चांदा-संबंधी किसी कृति से आई होंगी । (७) के ऊपर 'सत मैनां' शीर्षक दिया हुआ है और वह उस में मिलती भी है (दे० प्रिंस आव् वेल्स म्यूज़ियम, बंबई के भो० के साथ प्राप्त 'सत मैनां' के पृष्ठ) । (८) भी 'सत मैनां' की ही पंक्ति है और रचना में उपर्युक्त (७) के साथ ही उसके बाद की पंक्ति के रूप में आती है । इसके ऊपर शीर्षक 'ऐज़न' दिया हुआ है, जो 'सत मैनां' के लिए ही है । फलतः 'पद्मावत' की प्रति पर ये पंक्तियां किसी ने अपनी स्मृति के आधार पर ही विभिन्न रचनाओं से टांक दी हैं, और 'चांदायन' के संपादन में इनकी उपयोगिता शून्यप्राय है ।

७. रचना की लिपि-परंपरा

दाऊद मुसलमान थे । अपने गुरु जैनुद्दीन की स्तुति में कहते हुए एक स्थान पर उन्होंने लिखा है :

उघरे नैन हिये उजियारे । पायो लिष नौ अक्षर कारे ।
पुनि मैं अष्षिर की सुधि पाई । तुरकी लिषि लिषि हिंदुकी (गी?) गाई ।[८५]

अर्थात् शेख जैनुद्दीन की कृपा से उन्होंने लिखना सीखा और तुर्की (अरबी-फ़ारसी) में लिख-लिख कर उन्होंने हिन्दुगी (तत्कालीन हिन्दी)

८५ चांदायन, ६ ।

[गीतों-कविताओं] का गान किया । किन्तु यह उनके जीवन के प्रारंभ की बात थी । आगे चल कर उन्होंने अपनी रचनाओं को भी तुर्की (अरबी-फ़ारसी) में ही लिपिबद्ध किया, पूरी निश्चयात्मकता के साथ यह नहीं कहा जा सकता है ।

प्रस्तुत रचना के पाठ का यदि इस दृष्टि से विश्लेषण किया जाए तो ज्ञात होगा कि उसकी विभिन्न प्रतियों में जितनी अरबी-फ़ारसी लिपि से संबंधित भूलें मिलती हैं, नागरी से संबंधित भूलें उनसे किसी प्रकार कम नहीं हैं । और ध्यातव्य यह है कि जहाँ पर नागरी में लिखी हुई बी० प्रति में नागरी से और उससे अधिक अरबी-फ़ारसी लिपियों से संबंधित भूलें मिलती हैं, रचना की उन समस्त प्रतियों में जो अरबी-फ़ारसी में लिखी हुई हैं, विशेष रूप से मै० में, अरबी-फ़ारसी लिपियों से संबंधित भूलों के साथ-साथ नागरी की भूलें भी प्रचुरता के साथ मिलती हैं । इससे यह तो प्रमाणित ही है कि अरबी-फ़ारसी में लिखी हुई प्रतियों के कोई न कोई पूर्वज नागरी में लिपिबद्ध थे, और इसी प्रकार उसकी नागरी में लिखी हुई प्रति बी० का कोई न कोई पूर्वज अरबी-फ़ारसी में लिपिबद्ध था । बी० सत्रहवीं शती ईस्वी के पूर्वार्द्ध की प्रति है, अरबी-फ़ारसी लिपियों में प्राप्त अनेक प्रतियाँ इससे पहले की हैं (दे० ऊपर 'रचना की संपादन-सामग्री' शीर्षक) । इन सबके नागरी में लिपि-बद्ध पूर्वजों का लेखन-काल १४वीं अथवा १५वीं शती ईस्वी हो तो आश्चर्य न होगा । रचना की आदि प्रति नागरी में थी, यद्यपि यह कहने के लिए पर्याप्त प्रमाण अभी उपलब्ध नहीं हैं किन्तु यह असंभव भी नहीं है, और रचना की अरबी-फ़ारसी लिपियों में लिपिबद्ध समस्त प्रतियों की प्राचीनता और उन सभी में नागरी लिपि से संबंधित भूलों का अतिरेक इस संभावना की ओर स्पष्ट निर्देश करते हैं । जो भूलें जिन लिपियों से संबंधित हैं, आगे प्रायः उनका उल्लेख यथा-स्थान किया गया है, और उनको वहां पर आसानी से देखा जा सकता है ।

८. रचना के संपादन-सिद्धान्त

रचना की विभिन्न प्रतियों में संकीर्ण संबंध निम्नलिखित प्रकार से मिला है :

(१) म० बी० : परिशिष्ट में दिए हुए कडवक २७६ अ, २७६ आ, २८० अ, २८० आ, २६६ अ, ३२८ अ, ३३१ अ, ३३१ आ, ३३१ इ जो कि निश्चित रूप से प्रक्षिप्त हैं, इन दोनों ही प्रतियों में पाये जाते हैं ।

(२) शि० बी० : परिशिष्ट में दिया हुआ कवडक ३२८ ए, जो निश्चित रूप से प्रक्षिप्त है, इन दोनों प्रतियों में पाया जाता है।

(३) भो० बी० : २६५.१ तथा २६५.७ में दोनों प्रतियों में 'मेरइ सूधि कइ' के स्थान पर पाठ 'मीर मसऊद।मसूद कि।की' है, और भो० में शीर्षक भी तदनुसार है। बी० में कोई शीर्षक नहीं है, इसलिए दोनों के शीर्षक-साम्य का कोई प्रश्न नहीं उठता है। म० तथा शि० यहाँ पर खंडित हैं, अन्यथा ऊपर दिए हुए बी० के साथ शि० और म० के संकीर्ण संबंधों को देखते हुए उसमें भी यह विकृति मिल सकती थी।

फलतः बी० म० शि० तथा भो० निश्चित रूप से परस्पर संकीर्ण संबंध से संबंधित हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि परस्पर उनका यह संबंध किस प्रकार का है। अलग-अलग उनके अपने-अपने प्रक्षेपों पर दृष्टि डाली जाए तो इसका निराकरण सुगमता से हो सकता है। ऐसे प्रक्षेप निम्नलिखित हैं :

बी० : २४ अ, ३१ अ, २१० अ, २७८ अ, २८१ अ-ई, २८२ अ-अं, २८६ अ-ई, ३२८ आ-लृ, ३१८ ऐ-छ।

म० : ३२८ अक-अठ।

शि० : ५३ अ-आ।

भो० : ३११ अ-आ।

मै० : २८८ अ-आ, ३०७ अ।

इस तालिका से ज्ञात होगा कि बी०, म०, शि० तथा भो० के अपने-अपने प्रक्षेप भी हैं।

अतः संपूर्ण रूप से स्थिति यह ज्ञात होती है कि मै० से स्वतन्त्र—और उससे कदाचित् कुछ अधिक प्रचलित—एक पाठ-शाखा थी, जिसमें से पहले भो० का कोई पूर्वज अलग हुआ; भो० से बी० म० शि० का कोई प्रक्षेप साम्य नहीं है, केवल उपर्युक्त पाठ-प्रमाद-साम्य है, यह इसी ओर निर्देश करता है। उसके अनंतर बी० म० शि० के किसी सामान्य पूर्वज में प्रक्षेप-वृद्धि होती रही—शि० में ऐसा एक ही प्रक्षेप मिला है, किन्तु शि० प्रतियों के केवल दस ही अब प्राप्त भी हैं, यदि अधिक प्राप्त होते तो संभव था कि ये प्रक्षिप्त कडवक भी उसमें मिलते जो इस समय केवल बी० तथा म० में मिलते हैं। आगे चल कर बी०, म० और शि० के पूर्वज परस्पर अलग-अलग हो गए और उनमें उनके अपने-अपने प्रक्षेप मिलने लगे। यह प्रक्रिया बी० में अधिक हुई, क्योंकि ऊपर दी हुई तालिका में २७८ के बाद भी जहाँ से ३२८ तक म० प्रति मिलती है, बी० में प्रक्षेप-वृद्धि अधिक हुई है।

का० तथा मसा० की स्थिति स्पष्ट नहीं हो सकी है क्योंकि उनके क्रमशः छः और दो ही कडवक प्राप्त हुए हैं, और इतने छोटे 'अंश में' कोई ऐसी विकृतियाँ नहीं मिलती हैं जो अन्य किसी प्रति में भी पाई जाती हों।

इन परिणामों को कुछ इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

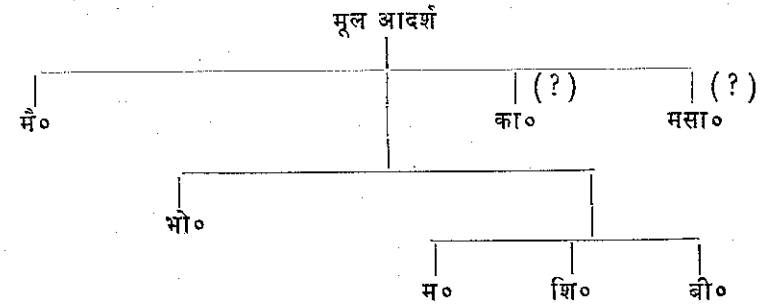

इस पाठ-संबंध के आधार पर रचना के पाठ-निर्धारण के लिए निम्नलिखित सिद्धान्त स्वीकार किए जा सकते हैं :

(१) जो पाठ मै० तथा अन्य किसी प्रति में समान रूप से मिलता है, उसे मूलादर्श का माना जा सकता है।

(२) जब कि मै० में एक पाठ हो और भो० म० शि० बी० में उससे भिन्न पाठ हो, तो दोनों की बहिर्साक्ष्य-मूलक स्थिति समान मानी जाएगी और पाठ-निर्धारण का आधार होगा रचना का अन्तस्साक्ष्य।

(३) जिस पाठ का आधार उक्त दोनों शाखाओं में से एक ही होगी—और प्रतियों अथवा उनके पूर्वजों में पाठ त्रुटित होने के कारण ऐसे कडवकों की संख्या नगण्य नहीं है—वह निश्चय ही अंतिम रूप से निर्धारित न किया जा सकेगा।

(४) जो पाठ केवल भो० म० शि० बी० शाखा में मिलेंगे और उनमें से जो भो० से साम्य रखता होगा, वह उनके सामान्य पूर्वज का माना जाएगा, और यदि भो० में एक पाठ तथा म० शि० बी० में भिन्न पाठ मिलता होगा तो पाठ-निर्धारण का आधार रचना का अन्तस्साक्ष्य होगा।

(५) जो पाठ केवल म० शि० बी० में मिलेगा, उसमें भी दो या अधिक पाठों के मिलने पर पाठ-निर्धारण का आधार रचना का अन्तस्साक्ष्य होगा।

(६) पाठ-भेद की शेष स्थितियों में सामान्यतः वह पाठ मूलादर्श का माना जाएगा जिसकी अन्तस्साम्यों एवं वहिर्सादियों के अनुसार अधिक संभावना होगी।

कहना नहीं होगा कि दो-चार अपवादों के अतिरिक्त प्रस्तुत संस्करण के लिए पाठ-चयन इन्हीं सिद्धान्तों के अनुसार किया गया है।

पाठ-सुधार के लिए समस्त अन्तरंग और बहिरंग संभावनाओं (Intrinsic and Extrinsic probabilities) का साक्ष्य ग्रहण करते हुए दो बातों का बराबर ध्यान रक्खा गया है : एक तो यह कि रचयिता भाषा के एक ऐसे रूप में रचना प्रस्तुत कर रहा था जो बाद में परिवर्तित हुआ है, और दूसरे यह कि रचना की पाठ-परंपरा नागरी तथा फ़ारसी-अरबी दोनों प्रकार की लिपियों में चली है। इसीलिए प्रस्तुत संस्करण में रचना का एक ऐसा पाठ प्रस्तुत किया जा सका है जो पहले नहीं प्रस्तुत किया जा सका था, और ऊपर दी हुई विधियों का अनुसरण कर हम रचना के एक ऐसे निर्भरता और विश्वास-योग्य पाठ पर पहुँच सके हैं जो अन्यथा संभव नहीं था।

जहां तक बी० के पाठ दिए गए हैं, कोष्ठकों में ऐसे पाठों को सुझाने की आवश्यकता अन्य प्रतियों की तुलना में अधिक पड़ी है जो रचना के अन्तस्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य के अनुसार प्राप्त पाठ के स्थान पर अधिक संभव हो सकते हैं। ऐसा इसलिए करना पड़ा है कि बी० प्रति का प्रतिलिपिकार रचना की भाषा तथा वस्तु से एक तो अन्य प्रतिलिपिकारों की तुलना में कदाचित् कम परिचित है, दूसरे वह अपनी बोली के रूपों से भी प्रायः प्रभावित है जो शेखावाटी (राजस्थान) की है, और तीसरे उसके लेखन की कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियाँ हैं जो उसके देश-काल की हैं और अन्यत्र उस रूप में नहीं मिलती हैं। शेष समस्त प्रतियां फ़ारसी-अरबी लिपियों में हैं, उनके संबंध में ऐसी कोई समस्याएं नहीं हैं। उनकी समस्या फ़ारसी-अरबी लिपियों और लेखन-शैलियों की अपूर्णता की यह सामान्य समस्या है कि वे हमारी बोल-चाल की भाषाओं को लिपिबद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं होती हैं, और बी० के मिल जाने से यह त्रुटि प्रायः दूर हो गई है।

६. रचना की भाषा

दाऊद के संबंध की अन्य कुछ समस्याओं के समान ही उनकी भाषा भी विवाद का विषय बनी हुई है। यहाँ पर उसके व्याकरण के रूपों को लेकर[८६]

[८६] **रचना के व्याकरण-रूपों के विश्लेषण के लिए देखिए क० मुं० विद्यापीठ के मुखपत्र 'भारतीय साहित्य' में प्रकाशनीय 'दाऊद की भाषा' शीर्षक लेख। यह विश्लेषण रचना के 'द्वितीय सर्पदंश (बिसहर) खंड' के आधार पर किया गया है।**

'यह देखने का प्रयत्न किया जा रहा है कि दो सौ वर्ष पूर्व के दामोदर के 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' और प्रायः दो सौ वर्ष बाद की जायसी की 'पद्मावत' में उनकी क्या स्थिति है। आशा है कि इससे दाऊद की भाषा की स्थिति अधिक स्पष्टता के साथ समझी जा सकेगी।

उक्ति० के संदर्भ सामान्यतः उसकी उस भाषा-भूमिका (उ० भा०) से उसके अनुच्छेदों की सहायता से दिए गए हैं, जो डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या की लिखी हुई है। इसी प्रकार जायसी की भाषा के सन्दर्भ सामान्यतः डॉ० प्रभाकर शुल्क की 'जायसी की भाषा' (जा० भा०) से उसके पृष्ठों की सहायता से दिए गए हैं। जो रूप इन विवेचनों में न मिलकर पाठों में मिल गए हैं, उन्हें उक्ति० के पृष्ठों-पंक्तियों और 'पद्मावत' के (मेरे द्वारा संपादित संस्करण के) कडवकों और उनकी पंक्तियों की सहायता से दिया जा रहा है।

संज्ञा

रचना में एक०।बहु०,।पुं०।स्त्री० कर्त्ता का रूप निर्विभक्तिक है, केवल अकारान्त पु० एक० में -उ प्रत्यय भी है।

उक्ति० में भी स्थिति यही है (उ० भा० अनु० ५६)।

जायसी की भाषा में भी यही स्थिति पाई जाती है (जा० भा० पृ० ८६)। उसमें भी-उ प्रत्यय उपर्युक्त प्रकार से मिलता है—यथा : 'भंडारू' (पदमावत' ५.१)

कर्म का रूप रचना में कर्त्ता के समान ही है, केवल अकारान्त पुं० एक० में -उ प्रत्यय भी है।

उक्ति० में भी ऐसा ही है (उ० भा० अनु० ५६)।

जायसी की भाषा में भी यही स्थिति पाई जाती है (जा० भा० पृ० ८८)। उसमें भी-उ प्रत्यय उपर्युक्त प्रकार से मिलता है—यथा 'करतारू' 'संसारू' ('पदमावत' १.१)

करण का भी एक० पुं०।स्त्री० का सामान्य रूप रचना में निर्विभक्तिक है। बहु० में -न्ह युक्त विकारी रूप प्रयुक्त हुआ है। विभक्ति के रूप में एक० पुं० में-अइं का और परसर्गों के रूप में 'सेउं' 'सेतीं' तथा 'सइं' का प्रयोग मिलता है।

उक्ति० में करण का रूप निर्विभक्तिक नहीं है, उसमें पुं० में सामान्य रूप से-एं।ए तथा स्त्री० में ई।इं विभिक्तयाँ (उ० भा० अनु० ५६), और परसर्गों के रूप में एक० में 'सउं'। (सेउं), तथा बहु० में -हु प्रयुक्त हुए हैं (उ० भा० अनु० ६२, ६३)।

रचना में जो करण में भी संज्ञा का निर्विभक्तिक रूप प्रयुक्त हुआ है, वह उक्ति० के बाद का विकास हो सकता है। उक्ति० की-एं रचना में-अइं के रूप में आई है, और उक्ति० का परसर्ग -सेउं रचना में यथावत् मिलता है, 'सेतीं' और 'सइं' परसर्ग बाद में विकसित हुए हो सकते हैं। इसी प्रकार बहु० में उक्ति० के -हु के स्थान पर रचना में जो-न्ह मिलता है, वह उक्ति० के बाद का विकास हो सकता है।

जायसी की भाषा में करण एक० प्रायः निर्विभक्तिक है, केवल कहीं-कहीं पर -हिं।हि अथवा -इं (-अइं)। -इ (अइ) अथवा-ऐं।ऐ।ए विभक्तियां मिलती हैं। ये उक्ति० की-एं।ए तथा रचना की -अइं के समान ही हैं। जायसी की भाषा में बहु० में -न्ह।न्हि मिलता है (जा० भा० पृ० ८९-९०)। रचना का 'सेउं' जायसी की भाषा में 'से।सैं' होकर और उसका 'सेतीं'। सेतीं' यथावत् मिलते हैं (जा० भा० पृ० ९५-९६)।

रचना में संप्रदान एक० का रूप या तो निर्विभक्तिक है, और या तो -हि विभक्तियुक्त है; उसमें परसर्गों के रूप में 'कहं' और 'लागि' प्रयुक्त हुए हैं।

उक्ति० में संप्रदान एक० का रूप निर्विभक्तिक अथवा -हि विभक्तियुक्त है, और परसर्ग के रूप में उसमें 'किहं' का प्रयोग मिलता है (उ० भा० अनु० ६२)।

जायसी की भाषा में भी संप्रदान या तो निर्विभक्तिक है, और या तो एक० में उसकी विभक्ति-हिं।हि है (जा० भा० पृ० ९३)। परसर्ग के रूप में उसमें भी 'कहं' मिलता है (वही, पृ० ९६)।

अपादान का रचना में एक ही रूप मिला है और वह 'हुत' परसर्ग युक्त है।

उक्ति० में अपादान में 'हुंत' परसर्ग मिलता है (उ० भा० अनु० ६२), जो कि रचना के 'हुत' का पूर्ववर्ती रूप हो सकता है।

जायसी की भाषा में अपादान में 'हुंत' है तथा उसके 'हुति।हुतैं।हुतें' रूप भी पाए जाते हैं (जा० भा० पृ० ९६-९७)।

संबंध रचना में परसर्ग-युक्त है; उसमें एक० पुं० का परसर्ग 'कर'। 'क', एक० स्त्री० का 'कइ' है, और बहु० पु० का 'के' है।

उक्ति० में परसर्ग एक० पु० में 'कर' तथा एक० स्त्री० में 'करीं' है, बहु० में भी 'कर' है (उ० भा० अनु० ५९)। 'क' तथा 'के' उसमें नहीं मिलते हैं।

जायसी की भाषा में एक० में परसर्ग 'कर' और 'क' और बहु० में 'के' प्रयुक्त हुए हैं (जा० भा० पृ० ९७)।

अधिकरण रचना में प्रायः निर्विभक्तिक है और जहां वह विभक्तियुक्त है, अकारांत एक० में विभक्ति-इ। अइं है। परसर्ग के रूप में उसमें कहीं-कहीं 'मांझ' भी प्रयुक्त मिलता है।

उक्ति० में भी अधिकरण का रूप प्रायः निर्विभक्ति है, विभक्ति-युक्त रूप में विभक्तियां -इ तथा-एं प्रयुक्त हुई हैं (उ० भा० अनु० ५९), और परसर्ग के रूप में 'मांझ' प्रयुक्त है (पाठ : १९-३०)। रचना का-अइं उक्ति० के-'एं' का ही एक रूप है, जैसा वह ऊपर करण में देखा जा चुका है, और 'मांझ' दोनों में समान रूप से मिलता है।

अधिकरण में जायसी की भाषा में भी प्रायः निर्विभक्तिक प्रयोग मिलते हैं, और विभक्ति के रूप में उसमें भी-अइं का प्रयोग मिलता है, यद्यपि उक्ति० के समान उसमें-एं का भी प्रयोग मिलता है (जा० भा० पृ० ९२-९३)। -इ विभक्ति कदाचित् उसमें नहीं मिलती है। परसर्ग 'मांझ' उसमें भी प्रयुक्त मिलता है (वही, पृ० ९८)।

रचना में संबोधन निर्विभक्तिक है, केवल पुं० आकारान्त शब्द उसमें एकारान्त होकर आते हैं, और कभी-कभी ह्रस्व-स्वरान्त शब्द दीर्घ-स्वरान्त हो गए हैं। क्रियाविशेषण के रूप में 'रे' का प्रयोग भी मिलता है।

उक्ति० में संबोधन एक० के निर्विभक्तिक प्रयोग नहीं मिलते हैं, बहु० में अकारान्त शब्द उसमें एकारान्त होता बताया गया है, और संबोधन के क्रिया-विशेषण 'अहो' तथा 'अरे' हैं (उ० भा० अनु० ६२)।

उक्ति० की तुलना में रचना में अन्तर यह है कि उसमें एक० में भी आकारान्त का परिवर्तन एकारान्त में हुआ है, तथा उक्ति० का 'अरे' उसमें 'रे' के रूप में आया है।

जायसी की भाषा में भी आकारान्त के अतिरिक्त सभी संज्ञाएं निर्विभक्तिक रूप में आई हैं; आकारान्त संज्ञाएं सामान्यतः एकारान्त होकर प्रयुक्त हुई हैं (जा० भा० पृ० ९४), तथा संबोधन वाचक क्रियाविशेषण के रूप में उसमें भी 'रे' का प्रयोग हुआ है (वही, पृ० १६५)।

सर्वनाम

रचना में कर्त्ता प्रथम पु० एक० सर्व० 'मइं', कर्म-संप्रदान प्रथम पु० एक० सर्व० 'मोहि', संबंध प्रथम पु० एक० सर्व० पुं० मोर, स्त्री० 'मोरि' हैं।

कर्त्ता प्रथम पु० एक० का दूसरा सर्व० 'हउं' है, जिसका बहु० का रूप 'हम' और संबंध प्रथम पु० बहु० का रूप 'हमार' है।

उक्ति० में प्रथम पु० एक० के समानांतर रूप क्रमशः 'हउं', मोंहि' और 'मोर' तथा बहु० के 'अम्हे' और 'अम्हार' हैं; 'मइं' उसमें करण एक० का रूप माना गया है (उ० भा० अनु० ६६)। रचना के एक० के रूप पूर्णतः उक्ति० के समान हैं, बहु० के उसके 'हम' तथा 'हमार' रूप उक्ति० के 'अम्हे' और 'अम्हार' से विकसित हुए हैं।

जायसी की भाषा में 'हउं' के स्थान पर रूप 'हौं' तथा 'मइं' के स्थान पर 'मैं' है; 'हम' और 'हमार' उसमें रचना के समान ही आते हैं (जा० भा० पृ० १००-१०२)।

रचना में द्वितीय पु० कर्त्ता० एक० के सर्व० 'तइं' तथा 'तूं' हैं; इनके संबंध का रूप उसमें 'तोर' है। एक अन्य सर्व० 'तुम्हं' है जो कर्त्ता में एक०।बहु० तथा संप्रदान में एक० में प्रयुक्त मिलता है। किन्तु 'तुम्हं' का यह प्रयोग आदरार्थक भी हो सकता है।

उक्ति० में 'तूं' रचना के समान ही मिलता है, 'तइं' करण में प्रयुक्त माना गया है, संबंध का रूप उसमें भी 'तोर' है। 'तुम्हं' उसमें बहु० में ही कर्त्ता 'तुम्हे' तथा कर्म 'तुम्ह' के रूपों में मिलता है। सम्भवतः उक्ति० का बहु० 'तुम्ह' ही सानुनासिकता से युक्त होकर रचना में बहु० तथा आदरार्थक एक० के लिए प्रयुक्त हुआ है।

जायसी की भाषा में 'तूं' तथा 'तोर' रचना के समान ही हैं, 'तइं' के स्थान पर 'तैं' है और 'तुम्हं' 'तुम्ह' के रूप में बहु० अथवा आदरार्थक एक० में प्रयुक्त मिलता है (जा० भा० पृ० १०३-१०५)।

रचना में तृतीय पु० का कर्त्ता एक० का० सर्व० 'सो' तथा कर्म-संप्रदान एक० का सर्व० तेहि' और संबंध एक० का सर्व० 'तेहि' है, करण० एक० में विकारी रूप 'तेहि' के साथ सेतें।सेतीं परसर्ग लगा हुआ है। बहु० में कर्त्ता का रूप 'ते' है।

उक्ति० में 'सो' तथा 'ते' रचना के समान ही मिलते हैं, कर्म एक० का रूप 'ताहि' है और संबंध एक० का 'ताकर' है (उ० भा० अनु० ६६)। ऐसा ज्ञात होता है कि रचना के समय तक संबंध का 'तेहि' ही अपनी सानुनासिकता छोड़कर कर्म-संप्रदान के लिए भी प्रयुक्त होने लगा था।

जायसी की भाषा में 'सो' रचना के समान ही है, कर्म-संप्रदान एक० में 'तेहि'। 'तेहि' तथा 'ताहि' दोनों हैं, तथा विकारी रूप में 'तेहि' उसमें भी मिलता है (जा० भा० पृ० १०६-१०६)।

रचना में संबंधवाचक सर्व० कर्त्ता एक० 'जो', है; कर्म-करण-संबंध एक० 'जेहि' है, जो उसका विकारी रूप लगता है। किंतु कहीं-कहीं पर उसमें कर्म एक० के लिए 'जेइं' भी प्रयुक्त मिलता है।

उक्ति० में संबंधवाचक कर्त्ता। कर्म एक० 'जो' है; करण एक० उसमें 'जेइ'।'जेइं' है (उ०भा० अनु० ६६)। उक्ति० का यह 'जेइं' ही रचना में 'जेहि' होकर आया है, किन्तु संबंध का रूप उक्ति० में 'जा' है।

ऐसा लगता है कि 'जो' का विकारी रूप 'जेहि' विकल्प से संबंध के लिए भी प्रयुक्त होने लग गया था।

जायसी की भाषा में भी संबंधवाचक कर्त्ता० एक० 'जो' है और उसके विकारी रूप 'जा' तथा 'जेइ'।'जेहि'।'जेहि' हैं (जा० भा० पृ० ११४-११५)।

रचना में अनिश्चयवाचक सर्व० कर्त्ता एक० 'कोइ' तथा 'कोउ' हैं; इनका विकारी रूप 'केहुं' है और संबंध एक० 'काहुकेर' है। अप्राणिबोधक अनिश्चयवाचक सर्व० के रूप में 'किच्छु। किछु।' मिलता है।

उक्ति० में कर्त्ता एक० 'कोउ' है, जिसका 'केहुं' रूप करण में प्रयुक्त माना गया है, संबंध एक० 'काहु' मात्र है, किन्तु असंभव नहीं कि वैकल्पिक रूप में उसके साथ परसर्ग 'कर' का भी प्रयोग होता रहा हो। अप्राणिबोधक अनिश्चयवाचक के रूप में उसमें भी 'किछु' मिलता है (पाठ : १५.५)।

जायसी की भाषा में 'कोइ' तथा 'कोउ' रचना के समान ही मिलते हैं, विकारी रूप 'केहुं' के स्थान पर 'केहु' है, और संबंध के लिए उसमें 'काहू। काहु' तथा 'काहूं (काहुं)।कर' मिलते हैं। 'काहु' तथा 'केहु' के साथ सानुनासिकता का आगम बाद का विकास हो सकता है। अप्राणिबोधक अनिश्चयवाचक 'किच्छु।किछु' जायसी की भाषा में 'किछु' के रूप में मिलता है (जा० भा० पृ० १११-११३)।

रचना में प्रश्नवाचक सर्व० का साधारण रूप कदाचित् नहीं है, उसका विकारी रूप 'केइं' मात्र है, जो कर्त्ता और संबंध में प्रयुक्त हुआ है। कर्म में उसका एक अन्य विकारी रूप 'किसु' भी मिलता है।

उक्ति० में प्रश्नवाचक कर्त्ता एक० 'को' है, जो कर्म एक० के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है; उसका विकारी रूप 'केइं'। 'केइ' है जो करण में प्रयुक्त माना गया है; संबंध का रूप उसमें 'काकर' है (उ० भा० अनु० ६६)।

जायसी की भाषा में 'को' तथा 'केइं' रचना के समान ही मिलते हैं, 'किसु' उसमें नहीं मिलता है।

रचना में निजवाचक सर्व० 'आपु' है, जो बलात्मक क्रियाविशेषण 'हि' के साथ एक मात्र कर्म में प्रयुक्त मिलता है।

उक्ति० में निजवाचक सर्व० कर्म का रूप 'अपाण' है, जिस में प्राकृत की ध्वनि-प्रणाली की छाप विद्यमान है।

जायसी की भाषा में निजवाचक सर्व० 'आपु' है, जो कर्म में बलात्मक क्रिया विशे० 'हि' के साथ भी मिलता है (जा० भा० पृ० ११६)।

विशेषण

रचना में पुं० विशे० प्रायः अकारान्त हैं, और स्त्री० विशे० प्रायः इकारान्त/ईकारान्त, पुं० अकारान्त विशे० कभी-कभी छंदोनुरोध से आकारान्त भी हो गए हैं।

उक्ति० की भाषा-भूमिका में इस विषय में कुछ नहीं कहा गया है।

जायसी की भाषा में स्थिति रचना के समान ही है (जा० भा० पृ० ११८-१२०)।

रचना में परिमाण के विशे० 'बहुल', 'बहु', 'बड', 'सभ' तथा 'अउर' हैं।

उक्ति० में इनमें से 'बहु' (पाठ : २६) और 'सब' के 'रूप' में 'सब' (पाठ : ५-२५, ६-३०, ४७-१३) ही हैं।

जायसी की भाषा में 'बहु' है (जा० भा० पृ० १२५, १८७), 'बहुल' है (जा० भा० पृ० १२५), 'बड़' है (पद्मावत ४४७.३, ४६२.१, ५०२.४) 'सब' है (जा० भा० पृ० १२५), और 'अउर' है (सर्व० के रूप में पद्मावत ७.७, ५.६, विशे० के रूप में वही, १२.६)। 'सभ' और 'सब' में संभवतः परस्पर विकल्प था, जिसमें एक में 'सभ' और दूसरे में 'सब' मिलता है।

रचना में संख्यावाचक विशे० 'एक' तथा 'सात' हैं।

उक्ति० में 'एक' यथावत् है, (पाठ : १५.२०, २१.२६, १५.२७), सात नहीं है।

जायसी की भाषा में 'एक' यथावत् आता है (जा० भा० पृ० १२२) और 'सात' भी रचना के समान ही है (जा० भा० १२२)।

रचना में समुदाय वाचक विशे० एक ही है : 'दुहूं' (दुहऊं); इसी प्रकार क्रमवाचक विशे० भी एक ही है : 'दूसर'।

उक्ति० में दोनों में से कोई नहीं है।

जायसी की भाषा में ये रचना के समान ही आए हैं (जा०भा० पृ० १२४)।

रचना में निकट संकेतवाचक विशेषण एक० पुं०।स्त्री० 'एह' है, जिसका विकारी रूप 'एहि'।'एहि' है।

उक्ति० में इसका रूप 'ए' है, जो अपने सार्वनाधिक रूप में रचना में अनेक बार आया है (उ०भा० अनु० ६६)। असंभव नहीं कि 'ए' और 'एह' का परस्पर विकल्प रहा हो, अथवा 'ए' ही बाद में 'एह' के रूप में विकसित हुआ हो।

जायसी की भाषा में भी 'एह' रूप ही मिलता है (जा० भा० पृ० ११८) और उसका विकारी रूप 'एहि'।'एही' है (वही, पृ० ११८)।

रचना में दूर संकेतवाचक विशे० एक० 'सो' है, जिसका विकारी रूप 'तेइं'।'तेहिं' है।

उक्ति० में 'सो' है (पाठ : १०.८) तथा 'तेइं' है (पाठ : ५१.२०)। संभव है कि 'तेहिं' 'तेइं' ही का बाद का रूप हो।

जायसी की भाषा में 'सो' है (जा० भा० पृ० ११८), और उसका विकारी रूप 'तेहि' है (पद्मावत ६३.६, ६३.६)। सानुनासिकता रचना तथा उक्ति० दोनों के विकारी रूपों में है, इसलिए यह असंभव नहीं है, कि 'तेहि' 'तेहिं' का ही बाद का रूप हो।

रचना में संबंध वाचक विशे० 'जो' है।

उक्ति० में भी यह मिलता है (पाठ : २०.८, २१.१८)।

जायसी की भाषा में तो यह मिलता ही है (जा०भा० पृ० ११८)

रचना में प्रश्नवाचक विशे० पुं० 'कवन'।स्त्री० 'कवनि' है, जिसके विकारी रूप 'कवनें' तथा 'केइं' हैं।

उक्ति० में 'कवन' के स्थान पर 'कवण' है (पाठ : १५.२, १६.२०, २१.१४), जिस पर प्राकृत की ध्वनि-प्रणाली का प्रभाव बना हुआ है, और उसका विकारी रूप 'केइं'।'केइ' है (पाठ २१.६, २७.४)।

जायसी की भाषा में पुं० 'कवन' है (पद्मावत ८.५), स्त्री० 'कवनि' है (जा० भा० पृ० ११८), तथा विकारी रूप 'केहि' है (पद्मावत ३५१.७)। ऐसा लगता है कि 'केहि' उस 'केइं'। 'केइ' का ही बाद का रूप है। जो रचना तथा उक्ति० में मिलता है।

रचना में अनिश्चयवाचक विशेषण 'कोउ' है।

उक्ति० में भी यह मिलता है (पाठ : २१.१८)।

जायसी की भाषा में यह 'कोइ' के रूप में मिलता है (जा० भा० पृ० ११८)।

रचना में निजवाचक विशेषण स्त्री० रूप में ही आया है, वह है 'अपनी'।

उक्ति० में यह 'अपणीं' के रूप में मिलता है (पाठ : ५२.१६)। इसमें प्राकृत की ध्वनि-प्रणाली का अवशेष बना हुआ दिखाई पड़ता है।

जायसी की भाषा में यह 'अपनी' के रूप में है(पद्मावत ३३०.१)। कदाचित् 'अपनी' 'अपणी' का विकसित रूप है।

क्रिया

रचना में सामान्य वर्त० प्रथम पु० एक० के लिए धातु में -अउं लगा है। संभावनार्थ वर्त० में भी ऐसा ही हुआ है। द्वितीय पु० एक० का साधारण रूप नहीं मिलता है, संभावनार्थ में धातु में-असि लगा हुआ है। द्वतीय पु० एक० के लिए धातु में-अइ लगा हुआ है, संभावनार्थ वर्त्त० में भी ऐसा ही है। यह रूप धातु में-अ लगाकर भी बना है। तृतीय पु० बहु० धातु में-अहिं लगाकर बना है। एक स्थान पर वह भी-अ लगाकर बना है।

उक्ति० में भी प्रथम पु० एक० धातु में-अउं, द्वितीय पु० एक०-असि और तृतीय पु० एक०-अ [कभी ही कभी-अइ] लगा कर बने हैं (उ० भा० अनु ७१)। उसमें तृतीय पु० बहु०-अति लगाकर बना है (पाठ : १६.५)।

जायसी की भाषा में रचना के ही रूप हैं (जा० भा० १३०-१३१)।

रचना में द्वितीय पु० एक० आज्ञार्थ के रूप धातु में -उ अथवा -अउ।-अहु लगाकर बने हैं, द्वितीय पु० एक० का आदरार्थक आज्ञा का रूप धातु में -इय लगाकर बना है, और तृतीय पु० एक० का कामनात्मक रूप -अइ लगाकर बना है।

उक्ति० में द्वितीय पु० एक० का आज्ञार्थक रूप -उ लगा कर बना है, और तृतीय पु० एक० का -अउ लगाकर (उ० भा० अनु० ७४)। शेष के संबंध की स्थिति ज्ञात नहीं है।

जायसी की भाषा में द्वितीय पु० एक० आज्ञार्थक रूप -उ अथवा -औ।-अहु लगाकर (जा० भा० पृ० १३७), आदरार्थक आज्ञा का रूप -इए लगाकर (वही, पृ० १३७), द्वितीय पु० एक० का कामनात्मक रूप -असि। अहि लगा कर (वही, पृ० १३७) तथा तृतीय पु० एक० का कामनात्मक रूप -अइ लगा कर (पद्मावत १३.७, २२७.५) बने हैं।

रचना में वर्त्त० कृदन्त का रूप धातु में -अत लगाकर बना है।

उक्ति० में यह -अत लगाकर बना है किन्तु कहीं-कहीं पर उसमें -अंत लगा है (उ० भा० अनु० ८१)।

जायसी की भाषा में यह -अत लगाकर बना है (जा० भा० पृ० १३८)।

सामान्यभूत प्रथम पु० एक० पुं० का रूप रचना में सामान्यतः धातु में

-एउं लगाकर बना है, किन्तु कुछ सक० क्रियाओं में यह -ईन्हेउं लगाकर भी बना है, द्वितीय पु० स्त्री० एक०-इहु लगाकर बना है, तृतीय पु० एक० पु० -आ।-अ,-एउ, -एसि, -आन, ईन्ह।इन, ईत, और -उत लगाकर बने हैं, तथा स्त्री० -अई।अइ, -इंसि, -आनी लगाकर बने हैं। बहु० पुं० -ए लगाकर बना है। भूतकृदन्त एक० पुं० -आ। एक० स्त्री० -ई लगाकर तथा उसका विकारी रूप -अएं लगाकर बना है। संभावनार्थभूत प्रथम पु० एक० -अतेउं लगा कर बना है।

उक्ति० में अकर्मक क्रियाओं के सामान्यभूत के समस्त पुरुषों के एक० रूप -आ लगाकर बने हैं, जैसाकि रचना में केवल तृतीय पु० एक० के लिए हुआ है, फिर भी एक स्थान पर उक्ति० में भी तृतीय पु० एक० -एसि लगा कर बना है (उ० भा० अनु० ७५)। सकर्मक क्रियाओं के कर्म प्रथम पु० पुं० एक० के रूप -आ, द्वितीय पु० पुं० एक० के -इअ तथा तृतीय पु० पुं० एक० के -एसि लगाकर बने हैं; तृतीय पु० बहु० पुं० -ए लगाकर बना है (वही, अनु० ७५)। भूत कृदन्त पुं० रूप -अ और कभी-कभी -आ लगाकर बने हैं, तथा स्त्री० रूप -ई लगाकर बने हैं (उ० भा० अनु० ८२)। धातु के साथ -ईन, जो रचना में -ईन्ह के रूप में मिलता है, लगाकर बना हुआ रूप भी उक्ति० में भूत कृदन्त का माना गया है (उ० भा० अनु० ८२)। संभावनार्थ भूत का तृतीय पु० का रूप धातु में -अत लगाकर बना है (उ० भा० अनु० ७६)। उसका विकारी रूप उक्ति० में नहीं है। संभावनार्थ भूत प्रथम पु० का रूप भी उक्ति० में नहीं मिलता है।

जायसी की भाषा में रचना के सामान्यभूत के सभी रूप यथावत् मिलते हैं (जा० भा० पृ० १४०-१४६), तथा संभावनार्थ का प्रथम पु० एक० का —अतेउं रूप भी उसी प्रकार उसमें मिलता है (जा० भा० पृ० १४०)। भूत कृदन्त का विकारी रूप इसमें भी -अएं लगाकर बना है (जा० भा० १४२-१४३)।

उक्ति० के साथ दाऊद और जायसी की भाषाओं में मिलने वाले सामान्य-भूत के रूपों में जो अंतर है, वह संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है :

	उक्ति०	दाऊद तथा जायसी की भाषा
सा० भूत :	अक० प्रथम पु० एक० पुं० : -आ	-एउं
	सक० ,, ,, : -आ	-ईन्हेउं
	अक० द्वितीय पु० एक० स्त्री० -आ	-इहु

ऐसा ज्ञात होता है कि या तो ये अन्तर क्षेत्रीय हैं और या तो उक्ति० के लेखक की भूल से हैं। एक० तथा बहु० और प्रथम पु० और द्वितीय पु०

के सामान्य भूत के रूप परस्पर समान रहे होंगे, इसकी संभावना बहुत कम है, क्योंकि प्राचीन तथा मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं में इनके रूपों में भेद दिखाई पड़ता है।

रचना में प्रथम पु० एक० के सामान्य भविष्यत् के रूप में -इहउं अथवा -अब लगाकर बने हैं।

उक्ति० में केवल -अब रूप मिलता है (उ० भा० अनु० ७७)।

जायसी की भाषा में समानान्तर रूप -इहौं तथा -अब लगाकर बने हैं (जा० भा० पृ० १३४)।

रचना में पूर्वकालिक कृदन्त रूप धातु में -इ लगाकर बना है।

उक्ति० में भी वह इसी प्रकार बना है (उ० भा० अनु० ८०)।

जायसी की भाषा में भी वह इसी प्रकार है (जा० भा० पृ० १५३)।

रचना में क्रियार्थक संज्ञा धातु में सामान्यतः -अइ लगाकर बनी है, किन्तु कहीं-कहीं पर वह -अ मात्र भी लगाकर बनी है।

उक्ति० में यह -अण लगाकर बनी है (उ० भा० अनु० ८३), जिसमें प्राकृत की ध्वनि-प्रणाली का अवशेष स्पष्ट रूप से विद्यमान है।

जायसी की भाषा में भी यह रचना की भांति -अइ लगा कर बनी है। (जा० भा० पृ० १५१-१५२)

रचना में भूत कृदन्त का विकारी रूप धातु में -अएँ लगा कर बना है।

उक्ति० में यह नहीं है।

जायसी की भाषा में यह रचना की भाँति ही है (जा० भा० पृ० १४२-४३)

अव्यय और क्रियाविशेषण

रचना में संयोजक अव्यय 'अउ', 'अरु', 'जनु', 'पइ', 'बरु' और 'कइ' मिलते हैं।

उक्ति० में 'जउ' के स्थान पर 'जइ' है (उ० भा० अनु० ८९), जो 'जउ' का पूर्ववर्ती रूप ज्ञात होता है। शेष में से कोई नहीं है।

जायसी की भाषा में 'औ' [कभी-कभी 'अउ'] है (जा० भा० पृ० १६४), 'अरु' के स्थान पर 'औरु' है (वही, पृ० १६४), 'जनु' है (वही, पृ० १६४), 'बरु' है (पद्मावत १४२.५, १४२.७, १६८.४ आदि)। 'जउ' 'जौ' के रूप में है (पद्मावत ५८.१, ७०.४, ७८.५ आदि)। 'पइ' 'पै' के रूप में है (जा० भा० पृ० १६४), तथा 'कइ' 'कै' अथवा 'की' के रूप में है (वही, पृ० १६४)।

निषेधवाचक क्रिया विशे० रचना में 'न', 'नहि' तथा 'जनि' हैं।

उक्ति० में 'न' है (उ० भा० अनु० ८९), 'नहि' उसका दृढ़तासूचक क्रि० वि० युक्त रूप मात्र है। रचना का 'जनि' उसमें 'जणि' के रूप में है (उ० भा० अनु० ८९), जिसमें प्राकृत की ध्वनि-प्रणाली की छाप विद्यमान है।

जायसी की भाषा में 'न', 'नहि' तथा 'जनि' हैं (जा० भा० पृ० १६२)।

कारण वाचक क्रिया विशे० रचना में 'काहे' हैं।

उक्ति० में 'काहे' 'काहें' के रूप में मिलता है (उ० भा० अनु० ६८)।

जायसी की भाषा में भी 'काहे' है (जा० भा० पृ० १६२)।

प्रकारवाचक क्रिया विशे० रचना में 'कस', 'जस', 'कइसे' तथा 'अइसें' हैं।

उक्ति० में इनमें से 'कइसे' 'कइसें' के रूप में मिलता है (उ० भा० अनु० अनु० ६८); शेष नहीं मिलते हैं।

जायसी की भाषा में 'कस' है (जा० भा० पृ० १६१), 'कइसे' 'कैसे' के रूप में है (जा० भा० पृ० १६१) और 'अइसें', 'अइसे' के रूप में है (जा० भा० पृ० १६१)।

कालवाचक क्रिया वि० रचना में 'जउ', 'अब', 'फुनि' तथा 'बहुरि' हैं।

उक्ति० में 'जउ' के स्थान पर 'जब' है (उ० भा० अनु० ६८), जो 'जउ' का विकल्प ज्ञात होता है, और 'फुनि' के स्थान पर 'पुनि' है (उ० भा० अनु० ८९)। शेष नहीं है।

जायसी की भाषा में 'जउ' 'जौ' के रूप में है (पद्मावत ८२.८, १७९.१, २२१.७ आदि), 'अब' यथावत् है (जा० भा० पृ० १५९), 'फुनि' भी है (जा० भा० १६०), और 'बहुरि' भी है (जा० भा० पृ० १६०)।

स्थानवाचक क्रिया वि० रचना में 'नियर', 'विच', 'कित', 'तहं' और 'बाहेर' हैं।

उक्ति० में इनमें से 'तहवां' 'तहां' के रूप में है (उ० भा० अनु० ६८), शेष नहीं है।

जायसी की भाषा में 'नियर', 'बिच', 'तहं' और 'बाहर' (जा० भा० पृ० १५८-१५९) तथा 'कित' (पद्मावत ३३९.६) सभी हैं।

समुदायबोधक क्रिया विशे० रचना में 'उ' तथा 'हुं' हैं।

उक्ति० में ये नहीं हैं।

जायसी की भाषा में ये हैं (जा० भा० पृ० १६५)।

दृढ़ता वाचक क्रिया विशे० रचना में 'इ' तथा 'पइ' हैं।

उक्ति० में 'इ' यथावत् है (उ० भा० अनु० ८९), किन्तु 'पइ' अपने तत्सम/अर्द्धतत्सम रूप 'पर' के रूप में है (उ० भा० ८९)। असंभव नहीं है कि 'पइ' तथा 'पर' का परस्पर विकल्प रहा हो।

जायसी की भाषा में -'अइ' '-ऐ' हो गया है (पद्मावत १०२.२-६) और 'पइ' 'पै' के रूप में मिलता है (वही, ८१.६, १४०.१, २२६.१, आदि)।

केवलार्थ बोधक क्रिया विशे० रचना में 'हि' है।

उक्ति० में भी यह है (उ० भा० अनु० ८६)।

जायसी की भाषा में भी यह है (जा० भा० पृ० १६५)।

परिमाणवाचक क्रिया वि० रचना में 'अत', 'केत' और 'अति' हैं।

उक्ति० में इनमें से कोई नहीं है।

जायसी की भाषा में 'अत' है (पद्मावत ५१.४, ५१.८), 'केत' है (वही, ५७६.५) और 'अति' भी है (वही ३४५.१)।

संबोधनबोधक क्रिया विशे० रचना में 'रे' है।

यह उक्ति० में है (उ० भा० अनु० ८६)।

जायसी की भाषा में भी यह है (जा० भा० अनु० १६५)।

इस प्रकार ऊपर दिए हुए कुछ सौ रूपों में से चार-छः रूपों में ही रचना की भाषा उक्ति० की भाषा से भिन्न दिखाई पड़ती है, अन्यथा वह उसके समान अथवा उससे विकसित प्रमाणित होती है। जायसी की भाषा से वह मिलती-जुलती होते हुए भी किंचित् पूर्व की स्थिति का आभास देती है।

चांदायन

१. स्तुति खण्ड

(१)

पहलै गाउ(उं) सिरजन हारू।
जिनि सिरज्या यह दौ(दे)स वि(दि)यारू।
सिरजसि धरती औरु अगासू।
सिरजसि मेर म(मं)दर कबिलासू।
सिरजसि चांद सुरुज उजियारा।
सिरजा(सिरजसि?)सरग नषत की मारा।
सिरजसि छाह सीव औ धूपा।
सिरजयि(सि) किर तन और सरूपा।
सिरजसि मेघु पवन अ(अं)धकारा।
सिरजसि बीज करै चमकारा।
जाकर सभै पिरथमी सिरजसि(?) कह्यो(ह्यों) येक सो गाई।
हीय गहवर मन हुल्हसै दूसर चित न समाई॥

सन्दर्भ—बी० १-३।

शीर्षक—बी० सिफति धणी की।

अर्थ—(१) पहले मैं सृष्टिकर्ता का [गुण] गान करता हूँ, जिसने इस देश-प्रदेश की सृष्टि की है, (२) जिसने धरती और आकाश की सृष्टि की है, जिसने मेरु, मन्दर और कैलास की सृष्टि की है, (३) जिसने उज्ज्वल (प्रकाशपूर्ण) चन्द्र और सूर्य की सृष्टि की है, जिसने स्वर्ग (आकाश) और नक्षत्र-माला की सृष्टि की है, (४) जिसने छाया, शीत और धूप की रचना की है, जिसने किल शरीर और रूपों की सृष्टि की है, (५) जिसने मेघ, पवन और अन्धकार की सृष्टि की है, और जिसने उस विद्युत् की सृष्टि की है जो चमत्कार करती है। (६) जिसकी सृष्टि की हुई (?) समस्त पृथ्वी है, उस एक का कथन मैंने गा कर किया है। (७) [उसके स्मरण से]